॥ श्री जिनवराय नमः ॥

मुखवस्त्रिका-सिद्धि

लेखक :

रतनलाल डोशी-सैलाना.

द्रव्य सहायक

श्रीयुत जुगराजजी रतनलालजी, नाहार

बरेली. (भोपाल)

सर्वमूल्य -)॥-

प्रकाशक :

बालचंदजी श्रीश्रीमाल—रतलाम

प्रथमावृत्ति | प्रति ११००
वीरसंवत २४६४ | इ. स. १९३८

प्राप्तिस्थानः—

(१) पूज्यश्री हुकमीचंदजी महाराज साहेबका
हितेच्छु श्रावक मंडल, चाँदनी चौक
रतलाम (मालवा)

(२) श्री जैनरत्न पुस्तकालय, सिंहपोळ,
जोधपुर (मारवाड)

(३) श्री श्रमणोपासक जैन नवयुवक मित्रमंडळ
सैलाना (मालवा)

अर्धमूल्य ०-१-६

धी वीरविजय प्रिन्टींग प्रेसमां रमणलाल पीताम्बरदास
कोठारीए छाप्युं ठे. रतनपोळ सागरनी खडकी—अमदावाद.
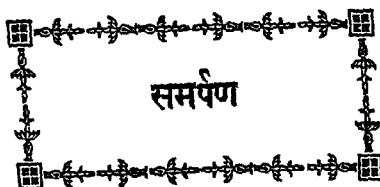
पूजनीय पूज्य महात्माओ ?

यह "मुखवस्त्रिका-सिद्धि" नामक छोटासा निबंध लिखा गया है, सो केवल आप महात्माओं की ज्ञान प्रसादी के आधार पर ही। इस तुच्छ सेवकने आप पूज्यवरों के विशाल ज्ञान भण्डारमेंसे इस विषयक जो यत् किञ्चित् ज्ञान पाया है, उसीके अनुसार उचित साधन जुटाकर यह पुष्प निष्पन्न किया गया है।

आप महर्षियोंने शास्त्र सम्मत एवम् सुविहितों–सुसाधुओं द्वारा आचरित "मुख वस्त्रिका" को सहर्ष धारन कर रक्खी है।

यद्यपि विरोधियों द्वारा आप महानुभावों पर असहनीय एवम् नीच शब्दों द्वारा आक्रमण हुवे हैं और हो रहे हैं। तथापि–आप अपने विरोधियोंकी हरकतों पर ध्यान नहीं देते हुए नीज ध्येय पर अडग रहकर जैनशासनकी उन्नति एवम् सुविहित पद्धतिका प्रचार कर रहे हैं। अत एव यह छोटा सा निबन्ध सहर्ष श्री चरणों में समर्पित करता हूं।

चरणानुचर
"रत्न"

भूमिका

यह सर्व विदित है कि-किसी भी कार्यमें निमित्त उपादान आदि कई कारण होते हैं। तदनुसार धर्मरूप कार्यमें सम्यक् ज्ञान, सच्ची श्रद्धा के सिवाय कुछ वाह्य कारण भी आगमोक्त और अनिवार्य है।

दुनियॉ जानती है कि-जैन धर्म दया प्रधान धर्म है, दया की आराधना के लिये जैनागमों में गणधरोंने धर्मोपकरणों की परिगणना की है। इन उपकरणों में कई खासकर श्रमणो के लिये है, और कुछ श्रावकों के लिये भी उपयोगी है।

इन आगमोक्त धर्मोपकरणों में "मुखवस्त्रिका" समस्त जैन जनता के लिये अत्यंत आवश्यक एवम् सर्वोपयोगी

है। क्यों कि–मुखवस्त्रिका के धारण करने से न केवल आगम आज्ञा की आराधना ही होती है, किंतु पाश्व भौतिक जीवों में वायुकायिक आदि जीवें की रक्षा भी अच्छी तरह होती है। शिष्ठता का पालन तथा उच्छिष्ट (थुंक उछलना) परिहार आदि कई अन्य दृष्ट फल भी मुखवस्त्रिका धारण के है। अतएव श्वेतांवर जैन समाज के सभी प्राचीन आचार्यों ने साधु के उपकरणों में मुखवस्त्रिका की प्रधान उपयोगिता मान्य की है, यहा तक कि–अचेलक जिनकल्पी मुनि जो कि–वस्त्र तक नहीं रखते, उनके लिये भी मुखवस्त्रिका रखना अनिवार्य वतलाया गया है, और जिनकल्पी मुनि मुखवस्त्रिका रखते भी थे। इसी प्रकार जैन श्रावक वर्ग के लिये भी सामायिक आदि धर्म क्रिया में रजोहरण और मुखवस्त्रिका रखना अनिवार्य है। और इन उपकरणो के होने से ही सामायिक पौपधादि क्रियाएं पूर्ण शुद्धता पूर्वक होना कहा जाता है।

ऐसे परमोपयोगी धर्मोपकरण की आवश्यकता को मानना, और दूसरो से मनवाना जिनाज्ञा का आराधक होना है। किन्तु अपनी मति शिथिलता, या कष्ट भीरुता, अथवा हठा-

ग्रहता से इसे नहीं मानना, निस्संदेह जिनाज्ञा की विराधना, और भूत दया की अवहेलना करना ही है, और विशेषतया विपरीत नामक मिथ्यात्व का सेवन करना है।

जो मुखवस्त्रिका जैनियों के लिये—हिंदुओं की शिखा एवं ब्राह्मणा की जनेऊ की तरह चिह्न और प्रधान धर्मोपक-रण है, इसके प्रचुर प्रचार में प्रमाण रूप यह प्रबन्ध लिखकर सैलाना निवासी श्रावक रतनलालजी डोशी ने जैन समाज का बहुत बडा उपकार किया है। डोशीजी की गवेषणा, धारणा, विषयों क क्रमबद्ध योजना, और भाषा सम्बन्धी सरलता, आदि सभी सराहने लायक है।

यह बात सत्य है कि—वर्तमान काल पारस्परिक विरोध परिहार व प्रेम प्रचार की अपेक्षा रखता है, किन्तु दिनो-दिन स्वयं शिथिल होते हुए धार्मिक विधानो में उत्तेजना की भी आवश्यकता कम नहीं है। महदाश्चर्य है कि—इसी छलसे कित-नेही विघ्न संतोषि लोग अपनी विषम प्रकृतिके कारण शान्त समाज पर अकारण अनुचित आक्षेप कर अशांत वातावरण उत्पन्न कर देते है। अभी थोड़े ही समय पूर्व अपना हठवाद दूसरों पर लादने में मस्त ऐसे मरुधर केशरी कहेजाने वाले

है। क्यौं कि–मुखवस्त्रिका के धारण करने से न केवल आगम आज्ञा की आराधना ही होती है, किंतु पार्श्व भौतिक जीवों में वायुकायिक आदि जीवें की रक्षा भी अच्छी तरह होती है। शिष्टता का पालन तथा उच्छिष्ट (थुंक उछलना) परिहार आदि कई अन्य दृष्ट फल भी मुखवस्त्रिका धारण के हैं। अतएव श्वेतांवर जैन समाज के सभी प्राचीन आचार्यों ने साधु के उपकरणों मे मुखवस्त्रिका की प्रधान उपयोगिता मान्य की है, यहां तक कि–अचेलक जिनकल्पी मुनि जो कि–वस्त्र तक नहीं रखते, उनके लिये भी मुखवस्त्रिका रखना अनिवार्य वतलाया गया है, और जिनकल्पी मुनि मुखवस्त्रिका रखते भी थे। इसी प्रकार जैन श्रावक वर्ग के लिये भी सामायिक आदि धर्म क्रिया में रजोहरण और मुखवस्त्रिका रखना अनिवार्य है। और इन उपकरणो के होने से ही सामायिक पौषधादि क्रियाएं पूर्ण शुद्धता पूर्वक होना कहा जाता है।

ऐसे परमोपयोगी धर्मोपकरण की आवश्यकता को मानना, और दूसरें से मनवाना जिनाज्ञा का आराधक होना है। किन्तु अपनी मति शिथिलता, या कष्ट भीरुता, अथवा हठा-

ग्रहता से इसे नहीं मानना, निस्संदेह जिनाज्ञा की विराधना, और भूत दया की अवहेलना करना ही है, और विशेषतया विपरीत नामक मिथ्यात्व का सेवन करना है।

जो मुखवस्त्रिका जैनियों के लिये-हिंदुओं की शिखा एवं ब्राह्मणा की जनेऊ की तरह चिह्न और प्रधान धर्मोपक-रण है, इसके प्रचुर प्रचार में प्रमाण रूप यह प्रबन्ध लिखकर सैलाना निवासी श्रावक रतनलालजी डोशी ने जैन समाज का बहुत बडा उपकार किया है। डोशीजी की गवेषणा, धारणा, विषयों क क्रमबद्ध योजना, और भाषा सम्बन्धी सरलता, आदि सभी सराहने लायक है।

यह बात सत्य है कि-वर्तमान काल पारस्परिक विरोध परिहार व प्रेम प्रचार की अपेक्षा रखता है, किंतु दिनो-दिन स्वयं शिथिल होते हुए धार्मिक विधानों में उत्तेजना की भी आवश्यकता कम नहीं है। महदाश्चर्य है कि-इसी छलसे कित-नेही विघ्न संतोषि लोग अपनी विषम प्रकृतिके कारण शान्त समाज पर अकारण अनुचित आक्षेप कर अशांत वातावरण उत्पन्न कर देते है। अभी थोड़े ही समय पूर्व अपना हठवाद दूसरों पर लादने में मस्त ऐसे मरुधर केशरी कहेजाने वाले

ज्ञान सुंदरजीने " मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास " नामक कल्पित पोथा लिखकर प्रकाशित किया है, उसमें एक प्रकरण मुख वस्त्रिका विषयक कुतर्क युक्त और अनर्थ मय लिखकर सत्प्रवृत्ति पर कुठाराघात किया है।

हमें संतोष है कि–दूरदर्शी श्रावक डोशीजी की संयत और सप्रमाण भाषा ने इस 'निबन्धको सुंदर बनादिया है। इस छोटे से निबन्ध के पूर्वार्द्ध में " नाभाशास्त्रार्थ " पर एक दृष्टि डाल कर बादमें मुखवस्त्रिका का मुंह पर बांधना अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया गया है। और उत्तरार्द्ध में मरुधर केशरीके मुख वस्त्रिका विषयक कुतर्करूप आक्रमणों का सप्रमाण प्रतिकार किया गया है, जो कि–युक्तियों से परिमार्जित परिमित तथा उचित है, इस प्रयास में डोशीजीका उचित परिश्रम पूर्ण सफल है इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

इधर वर्षों से मुखवस्त्रिकाके खंडन मंडन में कई निबन्ध निकल चुके हैं, संहारकर्ता से संरक्षण कर्ता को अधिक अवधान उद्योग व परिश्रम करना पड़ता है। तदनुसार खण्डन कर्ता के सम्मुख सभी मण्डनकर्ता की सावधानी अधिक ही है, किन्तु इस निबन्धके लेखक की सावधानी सबसे बढ़कर अधिक सफलता वाली है।

सत्प्रवृत्ति रक्षा और उसका अधिकाधिक प्रचार मात्र ही इस निबन्ध लेखनका मुख्य और पवित्र उद्देश्य है।

सुज्ञपाठक यदि पठन पाठन और मनन कर सत्य को अपनावेंगे तो लेखक का श्रम सफल होगा। और उत्साह बढ़ेगा। इत्यलं विस्तरेण।

चैत्र कृष्ण ९
शुक्रवार
सम्वत् १९९४ विक्रमी

श्री संघका हितेच्छु
" मुनि लक्ष्मीन्दु "

धन्यवाद

मान्यवर जुगराजजी रतनलालजी साहब नाहार !

आपने इस पुस्तक के प्रकाशन में द्रव्य सहायता प्रदान कर जो समाज सेवा की है, वह वास्तवमें प्राप्त सम्पत्ति का सदुपयोग ही हैं।

आये दिन धार्मिक प्रवृत्ति पर विरोधि लोग आक्रमण कर भद्रजनता को भ्रम में डालकर श्रद्धा भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते रहते है। किंतु आप महानुभावने सत् प्रवृत्ति एवम् सम्यक्त्व का रक्षण कर भद्रजनता को सम्यक्त्व में स्थिर करने रूप इस निबन्ध के प्रकाशन में अर्थ सहायता प्रदान कर "स्थिरी करण" नामक शास्त्र सम्मत षष्ठम दर्शनाचार का पालन किया है, और साथमें स्वसमाज रक्षण रूप महान् कार्य भी।

यद्यपि आपकी भावना इस पुस्तकको अमूल्य वितरण करनेकी थी, किंतु, अमूल्य वितरण में पुस्तकों का दुरुपयोग भी बहुधा होता है, यह विचार कर ही अर्द्ध मूल्य रक्खा गया है, तथापि आपकी ओर से तो यह पुस्तक अमूल्य ही है, क्यौं कि-प्राप्त अर्द्धमूल्य भी समाजोपयोगी कार्यों में ही व्यय होगा। उससे आपने अपना कोई सम्बन्ध ही नहीं रक्खा है।

अतएव आपके इस समयोचित एवम् उपयोगी दान के लिए आपको अनेकानेक धन्यवाद है।

विनीत-

रत्न

धन्यवाद

मान्यवर जुगराजजी रतनलालजी साहब नाहार !

आपने इस पुस्तक के प्रकाशन में द्रव्य सहायता प्रदान कर जो समाज सेवा की है, वह वास्तवमें प्राप्त सम्पत्ति का सदुपयोग ही है।

आये दिन धार्मिक प्रवृत्ति पर विरोधि लोग आक्रमण कर भद्रजनता को भ्रम में डालकर श्रद्धा भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते रहते हैं। किंतु आप महानुभावने सत् प्रवृत्ति एवम् सम्यक्त्व का रक्षण कर भद्रजनता को सम्यक्त्व में स्थिर करने रूप इस निबन्ध के प्रकाशन में अर्थ सहायता प्रदान कर "स्थिरी करण" नामक शास्त्र सम्मत षष्ठम दर्शनाचार का पालन किया है, और साथमें स्वसमाज रक्षण रूप महान् कार्य भी।

यद्यपि आपकी भावना इस पुस्तकको अमूल्य वितरण करनेकी थी, किंतु, अमूल्य वितरण में पुस्तकों का दुरुपयोग भी वहुधा होता है, यह विचार कर ही अर्द्ध मूल्य रक्खा गया है, तथापि आपकी ओर से तो यह पुस्तक अमूल्य ही है, क्यौं कि–प्राप्त अर्द्धमूल्य भी समाजोपयोगी कार्यों में ही व्यय होगा। उससे आपने अपना कोई सम्बन्ध ही नहीं रक्खा है।

अतएव आपके इस समयोचित एवम् उपयोगी दान के लिए आपको अनेकानेक धन्यवाद है।

विनीत–
रत्न

शुद्धि—पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१०	का	को
,,	१६	अरूचिकर	अरुचिकर
९	१४	फसला	फैसला
१०	१२	शिवपुराण	शिवपुराण के
१३	७	मुखादिवा तैवध्यिन्ते	मुखादवा तैर्वाध्यन्ते
१६	१०	नाय	नाप
१७	१७	देतीहै	देताहै
३०	१	है	हैं
३४	१६	,,	,'
३५	६	हा	ही
३६ नोट	७	हुईथी	हुई नहींथी
४०	१८	।लहाज	लिहाज
४७	१४	ही	हो
४९	६	फलाना	फैलाना
६०	३	ह	हैं
,,	१४	हातीहै	होती है
६१	१	भञ्जनेन	भञ्जनेन
६२	८	व्यवहारा	व्यवहारों
,,	१६	नही	नहीं
,,	२१	लग	लिंग

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	१७	प्रसंग	प्रसंगे
६४	१८	मुखवाल्लका	मुखवल्लिका
,,	१९	वाक्य	वाक्यो
६५	४	मुखवाल्लका	मुखवल्लिका
६६	५	कह	कही
६७ नोट	९	बस	सब
६८	९	(मल)	(मैल)
७१	२०	मे	में
,,	२२	यह इससे	इससे यह
७७	१०	कि	कि
७९	७	भा	भी
८२	३	उदस्थ	उदरस्थ
८४	१३	हैं	है
९५	९	समाजका	समाजको
परिशिष्ठ	२	[अभिप्राय]	०

इसके सिवाय भी प्रूफ संशोधनकी सुव्यवस्था नहीं होनेसे अन्य अनेक अशुद्धियां रह गई है, अतएव पाठक महानुभाव क्षमा करें। और योग्य सूचना देनेकी कृपा करें, जिससे आगे सावधानी रक्खी जाय।

विषय-सूचि

"मुख वस्त्रिका-सिद्धि"

" णमोत्थुणं समणस्स भगवओ वद्धमाणस्स "

मुखवस्त्रिका सिद्धि

विनय

दयामय तेरा ही आधार।

मङ्गल दायक सिद्धि विनायक, सब सुख के दातार,
जय जिनराज जगत हितकारी, भव दुःखभंजन हार ॥१॥

सत्य धर्म पर जैनाभासक, करते कूट प्रहार।
मिथ्या मान वडाई खातिर, तजते शुद्धाचार ॥२॥

सु साधु की निन्दा करके, सेवे मायाचार।
भ्रम मे डाले भद्रिक जनको, कर मिथ्या प्रचार ॥३॥

खुले मुँह से वायु कायका, करते नित संहार।
नाम धराते जैनी साधु, कर में करपति धार ॥४॥

मिथ्या मत रत उन जीवों का, हो, सन्मार्ग संचार।
यही कामना है 'डोशी' की. होवे सफल विचार ॥५॥

मिथ्या--भिमान--महिमा–

वास्तव में अभिमान कोई वस्तु नहीं है, न कोई देव दानव है, न इन्द्र, महेन्द्र, या अहमेन्द्र है, यदि है तो केवल आत्माका एक दुर्गुण ही, यह मिथ्याभिमान जिस व्यक्ति के हृदय में निवास करता है, वह अधमता (अधमगति) की ओर ही अग्रसर होता है। कहा भी है कि–"माणेण अहमा गई" ऐसा दुर्गुण का भण्डार, सद्गुण का शत्रु, सत्य संहारक, न्याय नाशक, और कपट का कोष, यह–मिथ्याभिमान जब मानव हृदय में प्रवेश करता है, तब उसको अपवित्र कर देता है। जिससे सत्य एवं न्याय का विदा होना पड़ता है। इस मान महिपाल की दुराग्रह से गाढ़ मैत्री है। ये दोनों अभिन्न मित्र सदा साथ ही रहते हैं। जब तक उक्त दुर्गुण मानव हृदय में रहता है, तब तक, क्या मजाल जो सत्य और न्याय आंख उठा कर भी उधर देखले, ऐसे मिथ्याभिमान ग्रस्त व्यक्ति को कोई सज्जन पुरुष अगर हित शिक्षा देता है, तो वह भी उसको अरूचिकर ही होती है। और फल स्वरूप शिक्षादाता को भी कभी २ अपमानित होना पडता है। क्योंकि–ऐसे प्राणियों को तो अपने समान वृत्ति वाले की निज स्वभाव के अनुकूल बातें ही प्रिय लगती है, और वह उन्हींको सुनने की इच्छा करता है।

ऐसे लोगों के लिये कुछ लिखकर समय एवम् समाज

के द्रव्य को व्यय करना लेखक अनुचित समझता है, परन्तु जो लोग सरल हृदय के हैं, जिन्हें सत्यासत्य के बिचार करने की इच्छा है, उनके लिए और मुख्यतः स्वसमाज रक्षणार्थ ही यह प्रयास किया जारहा है।

विक्रम सम्वत् १९६१ में नाभा शहरकी राज्यसभामें सात मध्यस्थों के समक्ष नाभा नरेश की अध्यक्षता में जनसमुदाय के सामने प्रसिद्ध विद्वान गणिवर्य श्री उदयचन्द्रजी महाराज साहब का वल्लभ विजयजी (मूर्तिपूजक) साधु के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। जिसमें गणिराज की शानदार विजय (जीत) हुई, और वल्लभ विजयजी बुरी तरह पराजित हुए (हारे)। जिसका लिखित फैसला ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को मध्यस्थों व नाभा नरेश के हस्ताक्षरों से दिया गया था, और जिसमें गणिराज की विजय घोषित की गई थी, वह उसी समय गुरुमुखी में छपकर जनता में वितरण भी हो चुका।

अपनी इस करारी हार से लज्जित हो हमारे मूर्तिपूजक बन्धु अपनी खोई हुई इज्जत को पुनः प्राप्त करने, स्वसमाज को अन्धकार में रखने, तथा भोली-भाली जनता में अपनी धाक जमाने के लिए कोई मार्ग ढूंढने लगे। आखिर आकाश पाताल एक करने और पानी की तरह द्रव्य बहाने पर लग भग डेढ़ वर्ष के बाद एक नूतन—नकली (जाली) फैसला

तैयार कराया, और शाम दामादि नीतिसे सात में से केवल तीन मध्यस्थों के और दो अन्य व्यक्ति (जो मध्यस्थों में नहीं थे) के हस्ताक्षर करवा कर उस मन गढ़न्त फैसले को छपवा दिया। जब यह नकली फैसला प्रकाश में आया तब हमारी समाज को अपने मूर्तिपूजक बन्धुओं की इस चालाकी का पता लगा, और उसी समय जन साधारण के भ्रमनिवारणार्थ एवम् सत्य रक्षणार्थ पंजाब के भाइयोंने उस नकली फैसले की पोल प्रकट करने को एक ट्रेक्ट द्वारा उसका खण्डन एवम् सत्य वस्तु स्थिति का दिग्दर्शन कराया। अस्तु,

(२)

गत कार्तिक मास में हमारे पूर्व परिचित कल्पित फैसले की पुनरावृत्ति अजमेर निवासी श्रीयुत हीराचन्दजी (मू० पू० जैन) ने की, जिसके प्रत्युत्तरमें उसी समय श्रीमान् कल्याणमलजी साहब वैद्यने सम्वत् १९६२ के इस मन-गढ़न्त फैसले की पॉलिसी का उद्घाटन करने वाले ट्रेक्ट पीताम्बरी पराजय" की पुनः आवृत्ति प्रकाशित कर फैलते हुए तिमिर को रोक दिया।

तदुपरान्त इस पीताम्बरी पराजय नामक ट्रेक्ट के उत्तर में रत्न प्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला फलौदी (मारवाड़) से "नाभा नरेश का असली फैसला" नामक एक चौदह पेजी ट्रेक्ट जो अजमेर से मुद्रित हुवा है, प्रकट किया गया। पर

जब हम इस फलौदी के कहे जाने वाले असली फैसले पर विचार करते हैं तो–यह प्रमाणित होता है कि–"अजब रफ्तार बेढंगी जो पहिले थी, वो–अब भी है"। लेखक महाशयने पीताम्बरी पराजय का उत्तर नहीं देकर सिर्फ उल्लिखित नकली फैसले की पुनरावृत्ति की है। और साथ में अपने पक्ष की विजय होने के सम्बन्ध मे असत्य डींगें मार कर अपने मुँह मियां मिट्ठु बने हैं।*

जब कि--नकली फैसले का उत्तर पहले पंजाब से व बाद में अजमेर से निकल चुका है, और वह उत्तर के लिए ज्यौं का त्यौं रक्खा हुआ है, जिसका कि वास्तविक उत्तर (जो उनके पास है ही नहीं) अभी तक (सिवाय नकली फैसले की पुनरावृत्ति के) नहीं मिला। ऐसी सूरत में इस विषय में अधिक प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। तथापि--भद्रजनों की शङ्काओं का समाधान एवम्--वस्तुस्थिति की सत्यता को विशेष रूप से सिद्ध करने के लिए कुछ नकली फैसले पर विचार कर मुखवस्त्रिका का मुख पर बान्धना सिद्ध कर दिखाते हैं।

फलौदीवाले फैसले के पृष्ठ २ पंक्ति १२ में लेखक महाशय बतलाते है कि—

" व्यतीत सम्वत्सर के ज्येष्ठ शु० ५ सं० १९६१

---

*इस विषयका उत्तर एक स्वतंत्र ट्रैक्ट (जयपराजयविषय) से देने का विचार है।

को जो शास्त्रार्थ मध्य में छोड़ा गया था, जिसका यह आशय था कि- ढूंढियों की ओर से सदा मुखबन्धन की विधि का कोई प्रमाण मिले, सो आज दिन तक कोई उत्तर इनकी तरफ से प्रगट नहीं हुआ, अतः उनकी मूकता आपके शास्त्रार्थ के विजय की सूचिता है।" आदि २

मार पीट कर खडे किये गये इस फैसले में हमारे वन्धु दो वातें वतलाते हैं. जैसेः--

(१) शास्त्रार्थ मध्य में छोड़ा गया.

(२) कारण--मुखवस्त्रिका सदा मुख पर वान्धनेके विषय में साधु मार्गियों से उत्तर लेना,

केवल ये दो वातें ही यहां संक्षेप में विचारी जाती है।

जव कि स्वयम् यह नकली फैसला ही वता रहा है कि--

"तिस पीछे कई दिन तक हमारे सामने आपका और उदयचन्दजी का शास्त्रार्थ होता रहा,"

आश्चर्य इस वात का होता है कि—एक तरफ तो लिखते हैं शास्त्रार्थ कई दिन तक होता रहा, और दूसरी तरफ लिखते हैं कि--"उनकी तरफ से कोई प्रमाण नहीं मिला" तो क्या, इतने दिन तक केवल वल्लभविजयजी अकेले ही अपने आप शास्त्रार्थ करते रहे ?

यदि एक पक्ष के विरुद्ध दूसरा पक्ष कुछ भी प्रमाण नहीं दे, तो वह उसी समय पराजित हो सकता है, फिर इतने दिन लम्वाने की आवश्यकता ही क्या हो सकती है ?

और शास्त्रार्थमें विजय भी किस प्रकार हुई बतलाते हैं,--वह भी देखिए—

"अतः उनकी मूकता आपके शास्त्रार्थ के विजय की सूचिता है"

ठीक है, क्यों न हो ? फैसले का जालीपन तो स्पष्ट है ? जबकि--बहुत दिनों तक शास्त्रार्थ होना स्वीकार करने के साथ फिर एक पक्ष की मूकता कह देना सत्य से दूर नहीं तो क्या है ? और बिना किसी प्रमाण के ही केवल एक पक्षकी मूकता ही से दूसरा विजयी हो गया तो, फिर इतने दिन तक शास्त्रार्थ चला कैसे ? और फैसला दिया किस आधार पर ?

हम दावे के साथ कहते हैं कि--मुखवस्त्रिका का मुख पर बान्धना शास्त्र विहित है, और हाथ में रखने के लिए कोई प्रमाण नहीं है। इसको सिद्ध करने के पूर्व हम इस कल्पित फैसले का जालीपन सिद्ध करने के लिए एक और प्रमाण इसी फलौदी से प्रकाशित हुए फैसले का देते हैं। इसमें यह बतलाया गया है कि-जब यह फैसला वल्लभविजयजी के पास पहुँचा, तब उसके उत्तर में वल्लभविजयजी ने एक पत्र नाभा नरेश को लिखा, उसमें वे लिखते हैं, कि—

" कितने ही समय से बहुत लोगों के उदास हुए दिल को आपने खुशकर दिया," इस बारे में आपको बार बार धन्यवाद है।"

पृ० ४ पं १५

वल्लभविजयजी के ये शब्द ही सिद्ध कर रहे हैं कि— शास्त्रार्थ के समय गणिराज की विजय और इनकी पराजय हुई थी, इसीसे इतने दिन तक ये और इनके भक्त उदास थे, इतने दिनों (डेढ़ वर्ष) के बाद जब यह नकली फैसला भक्तों की चतुराई से इन्हें प्राप्त हुआ, तब इनकी आत्मा प्रसन्न हो गई ।

महानुभावों ? अगर वास्तव में वल्लभविजयजी विजयी थे, इनकी जीत ही हुई थी, तो भला, इन्हे उदास होने का क्या कारण था ? कहीं विजेता भी उदास होता है ? क्या कभी किसी भाईने किसी विजयी को उदास होते देखा, या सुना है ? नहीं। वास्तव में तो जो हारता है वही उदास होता है, और उसीकी प्रसन्नता पलायन कर जाती है।

श्री वल्लभविजयजी के इस पत्र से अनायास ही यह सिद्ध हो जाता है कि--शास्त्रार्थ के समय अवश्य इनकी हार हुई थी जिससे इनपर उदासी छा गई थी। और अब डेढ़ वर्ष के बाद इस जाली फैसले के प्राप्त होते ही, वह पलायन की हुई प्रसन्नता पुनः प्राप्त हुई ।

पुनः देखिए--जब शास्त्रार्थ मध्य मे ही छोडा गया था तो- उस समय फैसला देने की क्या आवश्यकता थी ? यद्यपि मूर्तिपूजक लोग उस समय फैसला देना और स्थानक वासीयों का जीतना स्वीकार नहीं करते है, तथापि, इनकी

यह हठधर्मी अब चल नहीं सकती, क्योंकि--(उस समय के) इनके समाचार पत्र ही इस बात को स्वीकार कर रहे है, अधिक नहीं केवल एक ही प्रमाण देखिए--

जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर (जो० मू० पू० की खास सस्था है) से प्रकाशित " जैन धर्म प्रकाश " मासिक पुस्तक २१ फागण सम्वत् १९६२ अंक १२ में- "नाभा स्टेटे वाहर पाडेलो फेंसलो" शिर्षक से लिखा है कि—

"सं १९६१ ना जेठ मासमां पंजाब तावे नाभा स्टेटना राजा साहेबे" "जे कामचलाउ फेंसलो आप्यो हतो " ते बाबतनो आखरी फेंसलो हालमां तेओ साहेबे मुनिराज श्री वल्लभविजयजी उपर लखी मोकल्यो छे "

इस वल्लभविजयजी की सम्प्रदाय के समाचारपत्रके प्रमाण से यह सिद्ध होने में कोई कसर नहीं है कि--उस समय फैसला हो चुका था। और वह गणीराज की जय सूचक था। जभी तो उसे कामचलाउ कहा जा रहा है। अतः तत्कालीन दिया हुवा फैसला जो गणीराज के पास है वह सत्य है। और यह नूतन फैसला जाली है। यह स्पष्ट सिद्ध है। इसमें कोई शंका नहीं। इसके सिवाय इन लोगों के पत्रकारों ने नाभा नरेश को भी इस विषय मे अपशब्दों द्वारा संमानित किया था। यह प्रकट में इनकी पराजय सिद्ध करता है। और यह ठीक भी है। क्योंकि--जो व्यक्ति किसी

मामले मे न्यायालय से विजय प्राप्त करता है वह उस न्यायाधीश की प्रसंशा करता है, और हारने वाला करता है निन्दा। पर इसके विरुद्ध विजय पाने वाले को निन्दा करते, व पराजित व्यक्ति को प्रसंशा करते तो आज तक नहीं देखा। फिर यह अनोखी बात कैसी, जो उस समय की, इनकी पत्रिकाओं से प्रमाणित होती है। अतः इनके कहे जाने वाले असली (वास्तव में नकली) फैसले की कल्पितता म कोई सन्देह नहीं है। जिस भाई को इस विषय में अधिक जानना है उन्हें चाहिए कि--पोष्ट खर्च के तीन पैसे के स्टॉम्प भेजकर "पीत म्बरी पराजय" नामक ट्रेक्ट श्रीयुत कल्याणमलजी वैद्य नया बाजार अजमेर से मँगवाले।*

हमारे मूर्तिपूजक भाई कहते हैं कि--शिवपुराण आधार पर यह फैसला हुवा है, ओर उसमें मुखवस्त्रिका मुँह पर वान्धना नही लिखा है। इस पर से शिवपुराण के प्रमाण को भी देखकर निर्णय करना आवश्यक है--देखें शिवपुराण इस विषय में क्या कहता है ?

हस्ते पात्रं दधानाश्च, तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः।
मलिनान्येव वासांसि, धारयन्तोऽल्पभाषिणः

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ.२१ श्लो. २५

---

* और इस बात को यथा तथ्य जानना हो तो दिल्ली से प्रकाशित नाभाशास्त्रार्थ पढ़े।

*इस श्लोक में बताया गया है कि--हाथ मे' पात्र धारण किये हुए, और मुँह पर वस्त्र धारण करने वाले, मलिन वस्त्रों को धारन किये हुए, थोडे बोलने वाले (जैन साधु होते हैं)

इस श्लोक के दूसरे चरण में "तुंडे वस्त्रस्य धारका" यह शब्द ही बता रहा है कि--मुँह पर वस्त्र धारण करने वाले ही जैन साधु होते है। हाथ में रखने वाले नहीं। ऐसे स्पष्ट प्रमाण के होते हुए भी, क्या, मुखवस्त्रिका मुँह पर बान्धने वाले कभी हार सकते हैं ? कदापि नहीं, यहां स्पष्ट सिद्ध हो गया कि--नाभा में गणिराज की शानदार जीत हुई थी, और अपने प्रति द्वंद्वी की इस जीतको सहन नहीं कर सकने एवम् अपनी हार को छुपाने के लिए ही इस नूतन फैसले की सृष्टि हमारे मूर्तिपूजक बन्धुओं को करनी पड़ी है।

(२)

मुहपत्ति रखने के कारण–

प्रथम प्रकरण में हम यह दिखा चुके है कि--मुखवस्त्रिका विषयक नाभा शास्त्रार्थ में मुखवस्त्रिका मुँह पर बान्धने वाले गणिवर्य (साधु मार्गीय समाज) की विजय और हाथ मे रखने वाले (मूर्तिपूजक समाज) वल्लभविजयजी की

---

* यह श्लोक--श्री विद्याविजयजी लिखित-श्वेताम्बर प्राचीन के दिगम्बर ? नामक पुस्तक के पृ १६ पं ८ में भी छपा है।

पराजय हुई है। अब इस प्रकरण में हम मुखवस्त्रिका के मुँह पर बान्धने के मुख्य कारण बताकर उनको सप्रमाण सिद्ध करते है।

मुखवस्त्रिका के मुख पर बान्धने में मुख्यतः दो कारण है–

(१) वायुकायादि जीवों की रक्षा,

(२) जैन साधुत्त्वदर्शक " लिंग ", (चिन्ह)

इन दो कारणों की सिद्धि के लिए हम मूर्तिपूजक समाज के मान्य ग्रंथों और लेखो के ही प्रमाण देते हैं। पाठक वर्ग धैर्य पूर्वक पढ़ कर निर्णय करें।

(क)

वायुकायादि जीवों के रक्षणार्थ मुखवस्त्रिका की आवश्यकता--

कितने ही हाथ में मुखवस्त्रिका रखने वाले हमारे बन्धु अब तक यह कहते आ रहे है कि- मुख की वायु से वायु कायिक जीवों की हिंसा नहीं होती, पर उनका यह कथन निम्न प्रमाणों से बाधित सिद्ध होता है, देखिये,—

(१) हेमचन्द्राचार्य कृत योगशास्त्र के भाषान्तर में लिखा है कि--"मुँहपत्ति पण उडीने मुखमां पडतां जीवो तथा--मुखना उष्ण श्वासथी बाहरना वायुकाय जीवोनी विराधना टालवा माटे छे, तेम मुखमां पडती धूळने पण अटकाववा माटे छे."

(भीमसिंह माणेक द्वारा प्रकाशित और निर्णयसागर प्रेस से मुद्रित वि. सं० १९५८ पृष्ठ २६० पं. २७

(२) जैन प्रवचन साप्ताहिक के प्रवचनकार श्री राम विजयजी योग शास्त्र की बारह भावनाओंमें से तीसरी संसार भावना के विवरण में वायुकाय की वेदना में लिखते है कि–

" मुखादिवातैर्वध्यिन्ते "

(अर्थ) मुख आदिना पवनथी पण वायुना जीवों बाधा पामे छे.

(जैन प्रवचन वर्ष ४ अङ्क ३५ पृष्ठ ४०७ कोलम २)

(३) सागरानन्द सूरिजी "दीक्षानुं सुंदर स्वरूप" में लिखते है कि--

"वचननी प्रवृत्ति मां थती हिंसाने निवारवा मुंहपत्ति नी जरूर छे" (पृष्ठ ३१ पं. ७)

(४) पुनः सागरानन्द सूरिजी--मूर्तिपूजक प्रतिकार समिति द्वारा--अहमदाबाद से प्रकाशित " जैन सत्य प्रकाश " मासिक पत्रिका में "दिगंबरों नी उत्पत्ति" नामक लेख--माला में प्रथम वर्ष के अङ्क ७ पृष्ठ २०१ के दूसरे कालम में लिखते है कि--

मुखवस्त्रिकाना अभावे भाषानी सावद्यता—

"वली जेओ मुखवस्त्रिका जेवी भाषा समितिना वखते उपयोगी चीज माननारा नथी, तेओ वाउकाय रूपि एकेन्द्रियनुं रक्षण तेमज डांस मच्छर विगेरे उड़ता जीवों रूपि त्रसकायनुं रक्षण केवी रीते करी शके ?

मुखवस्त्रिका विना बोलवाथी--वायु विराधना केम ?

" एम नहिं कहेवुं के भाषा वर्गणाना पुद्गलों चउफरसी होवाथी आठ स्पर्श वाला वाउकाय विगेरेनी विराधना केम करी शके ? केमके शब्द वर्गणाना पुद्गलों जे भाषा पणे परिणमे छे ते जेओ के चउस्पर्शी छे तो पण तेवी रीते परिणमवुं नाभीथी उठीने कोष्ठमां हणाइने वर्णस्थानोमां फरशीने नीकलता पवन द्वाराए ज बने छे, अने ए वात बोलती वखत मोंढा आगल राखेला हाथ के वस्त्रना स्पर्श के चलनादिथी अनुभव सिद्ध छे, तो तेवी रीते भाषानी वखते नीकलतो वायु बाहर रहेला " सचित्त वाउकायनी विराधना करे तेमां शकाने स्थान होइ शके नहीं " ए वात पण शास्त्र सिद्ध छे के शरीरमां रहेलो वायु बाहरना वायुने शस्त्र रूप छे, शास्त्रने मुख्यताए नहीं मानता शोधकपणा-नीज दृष्टिने मुख्यताए मानवावाला लोको पण शरीरथी

---

१ इसी प्रकार लावण्य सूरिजी भी समीक्षा भ्रमाविष्करण लेख (वर्ष २ अं १) में लिखते हैं ।

नीकलता वायु ने झेरी हवा तरीके ज ओलखावे छे, जो की मुख आगल वस्त्र राखवाथी भाषानी साथे नीकलतो वायु शरीरमां पाछो प्रवेश करतो नथी, पण मुखमांथी नीकलता वायुना वेगने जरूर तोड़ी नाखे छे, अने ते वेग रहित थयेलो वायु बाहरना वायुने आघात करनार न थाय, के ओछो थाय, ते स्वभाव सिद्ध ज छे, अने तेथीज शास्त्रकारोए पण साधुओने फूंक देवानी मनाई करी।

निरवद्य भाषानी प्रतिज्ञा वाला छतां–जो मुह-पत्तिने न माने तो मिथ्यात्वी बने--

"आ उपरथी समजाशे के मुंहपत्तिने राख्या सिवाय बोलनारा भाषानुं निरवद्यपणुं राखनारा कहेवायज नहिं, तो पछी जेओ निरवद्य भाषाने माटे सूत्र सिद्ध वस्त्रनी जरुर छतां ते वस्त्रनीज जरुरीयात न माने तेओ पोताना आत्माने भाषा समितिथी चूकवे छे, एटलुंज नहिं पण सम्यक् श्रद्धान रूपी सम्यक्त्वथी पण चूकवे छे, अर्थात् उघाड़े मुखे बोलवा वालो भाषासमितिथी चूकेलो अने असंजममां पेठेलो गणाय"।

(५) पुनः सागरानन्द सूरिजी इसी पत्रिका के ९ वे अङ्क पृष्ठ २८१ के प्रथम कॉलम पंक्ति २० में लिखते हैं, कि--

"मोंढामांथी निकलेला पवनथी बहारना वायु कायनो नाश थाय."

इसी प्रकार इसी पृष्ठ के दूसरे कॉलम पंक्ति ७ से अपकायकी हिंसा भी वतलाते है, देखिये,–

मुंहपत्ति न राखवाथी अपकायनो नाश,–

"वली लाग लागट वरसाद ज्यारे आवेछे त्यारे त्रण दिवसनी हेली पछीज वधां स्थान जलना जीवोथी वासित थई जाय, अने तेवी वखते मुंहपति नही होवाथी उघाड़े मुखे बोलनारा मनुष्यो पोताने अहिंसक कहेवड़ावे तो पण असंख्यात अप्कायना जीवोनो घात करनार ज थाय छे."

(६) जैनीझम नामक ग्रंथ जर्मन विद्वान हेल्मुट ग्लाजेनाय लिखित के भाषान्तर (जैन धर्म) में पृ० ३४६ पं० २ से लिखा है कि–

"वायुना जंतुनी हिंसा थाय नहिं, एटला माटे मोढे बांधवानी मुख पट्टी"

(जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर से प्रकाशित)

उक्त प्रमाणों परसे यह अच्छी तरह सिद्ध होगया कि–मुंहकी वायु से वाहरके सचित्त वायुकाय के जीवोंकी विराधना होती है।

अतः प्रथम कारण सिद्ध हो चुका, जो भाई (खास कर श्री ज्ञान सुंदरजी) मुँह की वायु से वायुकाय की हिंसा नहीं मान कर उल्टी कुतर्कें करते हैं, उन्हे इन प्रमाणों पर शांत चित्त से विचार करना चाहिये।

(ख)

मुखवस्त्रिका जैन साधुओंका लिंग (चिन्ह) है।

गत प्रकरणमें हम वायुकायकी हिंसा मुखकी वायु द्वारा होती है, यह सिद्ध कर आये हैं. अब इस प्रकरण में– मुखवस्त्रिका बान्धने के दूसरे कारण पर विचार करते है,–

संसारमें जितने मत मतांतर हैं. उनके साधुओं-प्रवर्तकों के खास कोई न काई चिन्ह हुवा करता है, और ऐसे चिन्होंसे वे संसारके अन्य मतोंसे अपनी भिन्नता जाहिर कर सकते हैं। कोई पीत वस्त्र धारन करता है तो कोई रक्त--एवम् भगवां कोई लम्बा तिलक करता है तो कोई आड़ा, कोई त्रिशूल रखता है तो कोई मयूर पंख, मतलब यह कि--हर एक धर्म के प्रवर्तकोंका कोई न कोई स्वतंत्र लिंग दर्शक चिन्ह होता है, इसी प्रकार जैन साधुत्त्व का परिचय देने वाला मुख्य लिग, मुखवस्त्रिका है। अन्य धर्मावलम्बियों के चिन्ह सिवाय परिचय देने के किसी अन्य काम में प्रायः नहीं आते हैं, पर जैन शासन में साधुओं का यह चिन्ह (मुखवस्त्रिका) जीव रक्षा के उपयोग में आता है, और जैनलिंग का भी परिचय देती है, इसके लिए यहां किंचित् प्रमाण दिये जाते हैं,–

(१) सावचूरि यति दिन चर्याः–

इसी प्रकार इसी पृष्ठ के दूसरे कॉलम पंक्ति ७ से अपकायकी हिंसा भी बतलाते हैं, देखिये,–

मुंहपत्ति न राखवाथी अपकायनो नाश,–

"वली लाग लागट वरसाद ज्यारे आवेछे त्यारे त्रण दिवसनी हेली पछीज बधां स्थान जलना जीवोथी वासित थई जाय, अने तेवी वखते मुंहपति नही होवाथी उघाडे मुखे वोलनारा मनुष्यो पोताने अहिंसक कहेवडावे तो पण असंख्यात अप्कायना जीवोनो घात करनार ज थाय छे."

(६) जैनीझम नामक ग्रंथ जर्मन विद्वान हेल्मुट ग्लाजेनाप लिखित के भाषान्तर (जैन धर्म) मे पृ० २४६ पं० २ से लिखा है कि–

"वायुना जंतुनी हिंसा थाय नहिं, एटला माटे मोढे बांधवानी मुख पट्टी"

(जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर से प्रकाशित)

उक्त प्रमाणों परसे यह अच्छी तरह सिद्ध होगया कि– मुँहकी वायु से बाहरके सचित्त वायुकाय के जीवोंकी विराधना होती है।

अतः प्रथम कारण सिद्ध हो चुका, जो भाई (खास कर श्री ज्ञान सुंदरजी) मुँह की वायु से वायुकाय की हिंसा नहीं मान कर उल्टी कुतर्कें करते हैं, उन्हे इन प्रमाणों पर शांत चित्त से विचार करना चाहिये।

(ख)

मुखवस्त्रिका जैन साधुओंका लिंग (चिन्ह) है।

गत प्रकरणमें हम वायुकायकी हिंसा मुखकी वायु द्वारा होती है, यह सिद्ध कर आये हैं. अब इस प्रकरण में-- मुखवस्त्रिका बान्धने के दूसरे कारण पर विचार करते है,--

संसारमें जितने मत मतांतर हैं, उनके साधुओं-प्रवर्तकों के खास कोई न काई चिन्ह हुवा करता है, और ऐसे चिन्होंसे वे संसारके अन्य मतोंसे अपनी भिन्नता जाहिर कर सकते हैं। कोई पीत वस्त्र धारन करता है तो कोई रक्त--एवम् भगवां कोई लम्बा तिलक करता है तो कोई आड़ा, कोई त्रिशूल रखता है तो कोई मयूर पंख, मतलब यह कि--हर एक धर्म के प्रवर्तकोंका कोई न कोई स्वतंत्र लिंग दर्शक चिन्ह होता है, इसी प्रकार जैन साधुत्व का परिचय देने वाला मुख्य लिंग, मुखवस्त्रिका है। अन्य धर्मावलम्बियों के चिन्ह सिवाय परिचय देने के किसी अन्य काम में प्रायः नहीं आते हैं, पर जैन शासन में साधुओं का यह चिन्ह (मुखवस्त्रिका) जीव रक्षा के उपयोग में आता है, और जैनलिंग का भी परिचय देती है, इसके लिए यहां किंचित् प्रमाण दिये जाते हैं,--

(१) सावचूरि यति दिन चर्याः--

बत्तीसंगुलदीहं रयहरणं, पुत्तियाय अद्धेणं।
जीवाण रक्खणट्ठा "लिंगट्ठा" चेव एयंतु ॥

तथैवेदं–रजो हरणं मुखवस्त्रिका रूपं जीवानां रक्षणार्थं "लिङ्गार्थं" मपि।

अर्थात्--३२ अङ्गुल लम्बा रजोहरण और उससे अर्द्ध (सोलह अङ्गुल) मुखवस्त्रिका ये जीवों की रक्षा के लिये और "लिंग" के लिए भी रक्खे जाते है।

(२) साधु समाचारी और आवश्यक वृहद् वृत्ति आदि में मृतक साधु के मुखवस्त्रिका मुंह पर वान्धने की विधि बताई है (जिसका उद्धरण आगे दिया जायगा) उसका तात्पर्य भी प्रकरण सम्मत है।

इससे सिद्ध होता है कि मुखवस्त्रिका जैन लिंग की द्योतक है। और यह अपना कार्य सुचारु रूपसे तभी कर सकेगी जब कि–यह मुंह पर बन्धी होगी। क्योंकि हाथ में तो गृहस्थ लोग भी रुमाल आदि रखते है, इस लिए हाथ म रहने वाला वस्त्र मुखवस्त्रिका के समान उपयोगी नहीं होता।

एक कमरे में यदि संसारके भिन्न२ सम्प्रदाय के पांच पांच साधु एकत्रित किये जायँ, जिसमें पांच साधु हाथ में वस्त्र रखने वाले भी हों, और उस एकत्रित हुए साधु मण्डल में एक साधु मुखवस्त्रिका मुंह पर वान्धने वाला (साधु मार्गी जैन) हो, वहां किसी अन्य सामाजिक मनुष्य को

लाकर उस मंडली के सामने खड़ा कर पूछा जावे कि–
बताओ–इनमें जैन साधु कौन है ? तो वह व्यक्ति जल्दी से
मुखवस्त्रिका वाले जैनमुनि की ओर ही अंगूली निर्देश करेगा,
क्योंकि--उनकी परिचय दात्री--मुखवस्त्रिका जीव रक्षा के
साथ२ जैन साधुत्त्व को स्पष्ट वता रही है। इसीसे वह व्यक्ति
शीघ्र जान लेता है कि–यही जैन साधु है। ऐसे प्रश्न के
उत्तर में तो हाथ में वस्त्र रखने वालों को देख लेने पर
भी उनके जैन साधु होने का सहज में कोई भी अनुमान
नहीं कर सकता।

इससे यह सिद्ध है कि मुखवस्त्रिका जैन साधु का खास
लिंग है और वह मुंह पर रहने पर ही कार्यसाधक हो
सकती है, मुँह के सिवाय इतर स्थानों पर उसका उपयोग
करना दुरुपयोग ही है।

यहां हमने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार दोनों कारणों
को सिद्ध कर दिखाये है, अब हमारे प्रेमी पाठक अगले
प्रकरण में मुखवस्त्रिका को मुंह पर बान्धने के संबंधमें
शास्त्रीय प्रमाणो का अवलोकन करें।

(३)

सप्रमाण सिद्धि

गत प्रकरणों में मुख से निकलती हुई वायु से होने
वाली वायुकायादि जीवों की हिंसा को रोकने में और

जैन साधु पन का परिचय कराने में उपयोगी जो मुखवस्त्रिका है उसके सम्बन्ध में विचार किया गया, अब हम पाठकों के सम्मुख मुखवस्त्रिका मुंह पर बान्धने के विषय में कुछ प्रमाण पेश करने के पहले मुखवस्त्रिका शब्द पर थोड़ासा विचार करके उसका अर्थ बतलाने का प्रयत्न करते है।

मुखवस्त्रिका यह शब्द ही ऐसा है जो अपना अर्थ स्वयम् प्रकाशित कर रहा है, जैसे शब्द सिद्धि-मुखेस्थिता-मुख-स्थिता, मुखस्थिता चासौवस्त्रिका मुखवस्त्रिका" इति शब्दानु शासनम्--अर्थात् जो वस्त्रिका मुंह पर स्थित-बान्धी हुई हो उसीको मुखवस्त्रिका कहते हैं। शाब्दिक अर्थ को देखते हुए तो अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती, फिर भी अपनी पूर्व की प्रतिज्ञा का पालन करने और भद्र जनो की शंकाओं का निराकरण करने के लिए, इस विषय में हमारे मूर्तिपूजक बन्धुओ के मान्य ग्रन्थों के ही प्रमाण दिये जाते हैं।

(१) विशेषावश्यक भाषांतर भाग२ आगमोदय समिति से सम्वत् १९८३ में प्रकाशित-की प्रथमावृत्ति पृ० ३०९ पंक्ति १६ में भाष्य की २५७७ वीं गाथा के तीसरे चरण में "मुह पुत्तियाइ" शब्द आया है उसका अर्थ भाषा-तरकार पृ० ३०६ पक्ति ११ में करते हैं कि-

"मुख बांधवाने मुखवस्त्रिका राखवी"

(२) मूर्तिपूजक विद्वान कवि ऋषभदासजी ने

"हितशिक्षानो रास" द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ३८ पंक्ति १३ में लिखा है कि--

"मुखे बांधि ते मुंह पति"

इन दो प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका कि--मुखवस्त्रिका वही है जो मुंह पर बांधी जाय।

जब कि--मुखवस्त्रिका शब्द का अर्थ मुंह पर बांधने का वस्त्र विशेष सिद्ध हो गया तब इस विषय में कुछ भी शंका नहीं रहने पाती। अतएव आचारांगादि अङ्गोपाङ्ग सूत्रो में अनेक स्थानों पर आये हुए मुखवस्त्रिका शब्द का अर्थ भी उक्त प्रमाणों से मुंह पर बांधने का वस्त्र सिद्ध हो चुका है। मुखवस्त्रिका का मुंह पर बांधना सूत्र सम्मत होते हुए भी अब हम अपने प्रकरण की विशेष सिद्धि के लिए कुछ प्रमाण मूर्तिपूजकों (हाथ में बस्त्र रखने वाले) के मान्य ग्रन्थों के देते हैं।

(१) कण्णेट्ठियाए वा मुहणंतगेणं वा विणा—इरियं पडिक्कमे, मिच्छुक्कडं पुरिमड्ढ

(महानिशीथ सूत्र अ० ७)

अर्थात्–कान में घाली हुई मुखवस्त्रिका के बिना या सर्वथा मुखवस्त्रिका के बिना इरिया वही क्रिया करने पर साधु को मिथ्या दुष्कृत या पुरिमार्द्ध प्रायश्चित आता है।

(२) देवसूरिजी समाचारी ग्रन्थ में लिखते है कि–

"मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखेबध्वा"

अर्थात्--"मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना कर मुँह पर बांध कर"

(३) भुवनभानु केवली के रास में रोहिणी के अधिकार वाली ६६ वीं ढ़ाल में--

"मुहपतिए मुखबांधीनेरे," तुमे बेसो छो जेम,
तिम मुखे डुंचो देइनेरे, बीजे बेसाए केम ॥३॥

अर्थात्--रोहिणी कहती है कि--हे गुरुणिजी ? जिस प्रकार मुखवस्त्रिका मुखपर बांधकर तुम बैठते हो उस प्रकार मुखपर डुंचा देकर दूसरे से कैसे बैठा जाय ?

(४) हरीबल मच्छी रासके--खंड२ ढाल ६ में
साधुजनमुख मुंहपत्ति, बांधी है जिन धर्म ।

(५) विचार रत्नाकर में -
कण्ठे सार सरस्वती, हृदि कृपा नीति क्षमाशुद्धयो ।
"वक्त्राब्जे मुखवस्त्रिका" सुभगता, काये करे पुस्तिका ॥

अर्थात्--(गुरु के वर्णन में) उनके कंठ मे सरस्वती विराजमान है, हृदय में दया, नीति, क्षमा, और पवित्रता है "मुख पर मुखवस्त्रिका है," शरीर में सुभगता, और हाथ में पुस्तक है ।

(६) हित शिक्षानो रास पृ०२०७ पंक्ति ९ (श्रावकाधिकार)
रजोहरणो "उज्झल मुंहपति अलगी नकरे ते मुह थी"

यहां मुखवस्त्रिका को मुंह से दूर नहीं करे ऐसा कहा है ।

(७) सम्यक्त्व मूल बारह व्रत नो टीप पृष्ठ १२१ पं १६--
"जयणायुक्त थई "मुहपत्ति मुखे बांधीने" पुस्तक उपर दृष्टि राखीने भणे तथा सांभळे" ऐसा सामायिक व्रत के अधिकार में लिखा ह ।

(८) 'जैनीझम' के लेखक जर्मन विद्वान प्रो० हेल्मुट ग्लाजेनाप हैं, जिसका भाषांतर गुजराती में नरसिंह भाई ईश्वरभाई पटेल ने किया है, और भावनगर की जैन धर्म प्रसारक सभासे प्रकाशित हुवा है उस (जैनधर्म नाम की पुस्तक) के पृ० ३९१ पं. २८ पर लिखा है कि--

त्यारे एमनो साथेना साधुअे तुरतज म्हों उपर मुखपट्टी बांधी. श्वास वडे कोई जीवनी हिंसा थाय नहिं एटला माटे जैन साधुओअे बांधवानी होय छे ।

(९) मूर्तिपूजक विजयानन्दसूरि (आत्मारामजी) ने अपने ही किसी मू० पू० साधुको--इन्ही नाभा शास्त्रार्थ में पराजित वल्लभविजयजी के हाथ से एक पत्र लिखवाया है, जिसका फोटो "मुहपत्ति चर्चासार" नामक पुस्तक जो पन्यास रत्नविजयजी गणि लिखित है और विजय--नीति सूरि जैन लाईब्रेरी अहमदाबाद से सम्वत् १९९० म प्रकाशित हुई है (प्रथमावृत्ति) उसके पृष्ठ ८४ के आगे दिया गया है, और उसकी नकल भावनगर के मूर्ति--पूजक पत्र "जैन" साप्ताहिक के पुस्तक ३३ अंक ३६ तारीख २२-९-१९३५

मिती भादवा (मारवाडी आश्विन) विदी १० रविवार विक्रम सम्वत् १९९१ पृष्ठ ८९७ में छपी है, और इसके छपवाने वाले भी मू० पू० मुनि विजय हर्षसूरिजी है, उसकी यथा तथ्य नकल फोटूसे दी जाती है'--

श्री

मुकाम सुरत बन्दर

मुनि श्री आलमचंदजी योग्य लि० आचार्य महाराज श्री श्री श्री १००८ श्री मद्विजयानंद सूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराज जी आदि साधु मडल ठाने ७ के तर्फ से वदणा ऽनुवदणा १००८ बार वाचना चिट्ठी तुमारी आइ समंचार सर्व जाणे है यहां सर्व साधु सुखसातामे है तुमारी सुखसाता का समंचार लिखना--

मुहपत्ति विशे हमारा कहना इतनाहि है कि मुहपत्ति बंधनी अच्छी है और घणे दिनों से परम्परा चली आइ है इनकों लोपना यह अच्छा नही है हम वन्धनी अच्छी जाणते है परन्तु हम ढुंढीए लोक मे सें मुहपत्ति तोडके नीकले है इस वास्ते हम वन्ध नही सक्ते है और जो कदी वन्धनी इच्छीए तो यहां वडी निन्दा होती है और सत्य धर्म में आये हूए लोकों के मनमें हीलचली हो जावे इस वास्ते नहीं वंध सक्ते है सो जाणना अपरंच हमारी सलाह मानते हो तो तुमको मुहपत्ति वंधने मे कुछ भी हानी नहीं है क्यों की तुमारे गुरु वंधते है और तुम नहीं वंधो यह अच्छी वात नहीं है आगे

जैसी तुमारी मरजी हमने तो हमारा अभिप्राय लिख दीया है सो जाणना—और हमकों तो तुम बांधोगे तोभी वैसे हो और नहीं बांधो तोभी वैसेहीहो परं तुमारे हित के वास्ते लिखा हे आगे जैसी तुमारी मरजी—

१९४७ कत्तक वदि ०)) वार बुध दसखत—वल्लभविजय की वन्दणा वाचनी दीवाली के रोज दस वजे चिट्ठी लिखी है।

[उपरोक्त पत्रमें कई जगह शाब्दिक अशुद्धियां है, पर चिट्ठी की यथा तथ्य नकल देने के कारण हमने उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया है]

(१०) साधुओंके प्राचीन चित्र जो मुहपत्तिचर्चासार में दिये है उनमें भी साधुओंके मुंह पर मुखवस्त्रिका बंधी हुई है। और प्राचीन कल्प सूत्र वारसा में भी इसी प्रकार के मुखवस्त्रिका मुखपर वांधे हुए चित्र हैं।

इतने पुष्ट और सबल प्रमाणो के होते हुए भी हमारे मू० पू० बन्धु सत्य एवम् न्याय मार्ग के अनुकरण करने वालों पर अनुचित हमले करते हैं, यह सरासर अन्याय है।

मुखवस्त्रिका मुख पर वांधने के सम्बन्ध में मू० पू० आचार्य केवल इतना कह कर ही नहीं रूके हैं, किन्तु इससे भी आगे मृतक साधु (शब) के मुंह पर भी मुखवस्त्रिका बांधने का विधान करते हैं, इस सम्बन्ध में भी बहुतसे प्रमाणों में से केवल दो ही प्रमाण दिये जाते हैं, यथा,—

(१) मयग कलेवरंण्हविता कुंकुमाइहिं विलिंपित्ता य अवंगं चोलपट्टं परिहाविय, "पुत्ति मुखे बंधीय" बीयं वत्थं हिट्ठा पत्थरिय, तइएणं उवरिं पाउणिय संथारे कडिए दोरिं बज्झइ।

(साधु समाचारी)

अर्थात्–मृतक शवको स्नान कराकर कुंकुम आदिसे विलेपन करे और उल्टा चोल पट्टा पहिनाके, "मुखवस्त्रिका मुंह पर बांधके" दूसरा वस्त्र नीचे बिछाकर और तीसरा वस्त्र संथारे पर ढांककर कमर में डोरी बांधे।

(२) तत्थय—जाहे चेव काल गतो ताहे चेव हत्थ पादा उज्जाधारिज्जन्ति। तुडं चसे "मुंह पोतियाए बज्झई, जाणि संधाणाणि अंगुलि–अंतराणि तच्छइ इसिं फालिज्जाइ, पायंगुट्ठे सुहत्थंगुंट्ठेसु वज्झतीति।

अर्थात्—जिस समय साधु काल करे, उसी समय शीघ्र हाथ पैर सीधे पकड रक्खे, और उसका "मुंह मुहपत्ति से बांधे" जितने अंगुली के बीचके सांधे (जोड़) हैं उनके "चमडे को चीरे," और पैर व हाथके अंगुठे को बांधे।

आवश्यक बृहद् वृत्ति (हरिभद्रीय) प्रतिक्रमणाध्ययन
परिष्ठापनिकाधिकार

इस प्रकार मुखवस्त्रिका का मुंह पर बांधना अनेक पुष्ट एवम् प्रबल प्रमाणों से सिद्ध है, यहां तक कि मृतक साधुके भी मुखवस्त्रिका बांधना प्रमाणित है, जो कि–सिवाय लिंग

प्रदर्शन के अन्य किसी उपयोग में नहीं आती, तो फिर जीवित साधु अवश्य बांधे इसमें तो शंका ही नहीं हो सकती।*

यद्यपि मुखवस्त्रिका के मुंह पर बांधने के ये प्रमाण इतने प्रबल और अकाट्य है, कि–जिन्हें देखकर सुज्ञ जनों को किसी भी प्रकार की शंका नहीं रह सकती, तथापि—हमारे कितने ही भाई इस विषय की शंकाएं उठाकर भद्रजनता को भ्रम में डालने का प्रयत्न करते हैं, और श्री ज्ञान सुन्दरजी आदिने किया भी है, अतएव, आगे उत्तरार्द्ध में हम उन शङ्काओंका भी पृथक्‌२ समाधान करेंगे। पाठक धैर्य एवम् शान्तिसे पढ़ें।

*इन दोनो प्रमाणोका मतलब केवल मुखवस्त्रिका से है, अन्य बातो से नहीं।

"उतरार्द्ध"

"शंका—समाधान"

(१)

जब किसी व्यक्ति का उसकी चरित्र हीनता के कारण समाज से तिरस्कार हो जाता है, तब वह व्यक्ति अपनी चरित्र हीनता का उतरोत्तर पोषण करनेके लिए (जो उस समाज में रह कर नहीं हो सकती) और उस समाजसे अपने तिरस्कार का बदला लेने के लिए इतर समाज में मिल जाता है, और उसमें रहकर अपना (चरित्र हीनताके कारण) तिरस्कार करने वाली समाज को दिल खोलकर अच्छी तरह कोसता है, पेटभर कर बुराई करता है। यदि उसमें शक्ति हो तो वह उस समाज को ही नष्ट करदे, ऐसी भावना रखता है। पाठक देखेंगे, कि आज एक हिंदू किसी कारण से अपनी समाज से बहिष्कृत होकर मुस्लिम या इसाई आदि समाजमें जा घुसता है, तब वह हिन्दू समाजका ऐसा कट्टर दुश्मन हो जाता है कि—जितने वे असली हिन्दू विरोधी भी नहीं होंगे इसका मुख्य कारण अपने अपमान का बदला ही है, नतु—अन्यः।

ठीक इसी दूषित प्रवृत्ति को श्री ज्ञानसुंदरजी ने भी पकड़ रक्खी हैं, आपके आचरणों की ख्याति से ही शुद्ध जैन समाज से आपको बिदाई मिल गई, पुनः प्रविष्ठ होने की कोशीश करने पर भी कृतज्ञता (!) के वश मूल साधुमार्गी समाज में आप प्रविष्ट नही होसके विज्ञ समाजमें भी आपका आदर न होकर अनादर तथा तिरस्कार ही हुवा, तव आपने येन केन प्रकारेण इस समाज से अपने निरादर एवम् अपमान का बदला लेने की ठानली, वस, जा घुसे मूर्तिपूजक समाज में, और वहां रहकर अपने ज्ञान एवम् आश्रयदाता को लगे पेटभर कोसने। स्वामीजी ने वहां रहकर भी अपना चरित्र किस प्रकार कलंकित किया है, इस विषयक वर्णन एक स्वतंत्र ट्रेक्ट द्वारा किया जा सकता है, परन्तु यहां तो केवल इतना ही कहना है कि-श्री ज्ञानसुन्दरजी ने मुखवस्त्रिका विषयक जो जो कुतर्कें उठाई है वे सब निरर्थक होकर, इनकी चित्तवृत्ति को स्फुट कर रही है। सुन्दरजीने बाल ब्रह्मचारी,शास्त्रोद्धारक स्वर्गीय पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज को अपने पोथेमें प्रायः प्रत्येक स्थान पर "अमोलखर्षिजी" लिखकर न जाने किस वैर का वदला चुकाया है, आपने साधु मार्गीय समाज को कितने हल्के शब्दों से सम्बोधन किया है ? यह तो पाठक स्वयं अनुभव कर सक्ते हैं। इस लिये हमे-विषयान्तर नहीं कर ज्ञान सुन्दरजी के मुखवस्त्रिका विषयक फैलाए हुए भ्रम जाल का ही छेदन करना है। अतएव निम्न लिखित शङ्का समाधान

रूपमें पाठकों की सेवा में रखते है। पाठक धैर्यपूर्वक अवलोकन एवम् मनन करे।

(१) शंका—मृगावती रानी ने गौतमस्वामी को कहा कि–आप मुखवस्त्रिका मुख पर बांधकर ही मेरे पुत्रको देखने चलें, ऐसा विपाक सूत्र के मूलपाठ में कहा है, इससे सिद्ध होता है कि–उस वख्त गौतमस्वामी के मुखपर मुखवस्त्रिका बंधी हुई नहीं थी, किन्तु हाथ ही में थी। इससे मुखवस्त्रिका हाथ में रखना कैसे प्रमाणित नहीं हो सकता ?

समाधान—इस शंका का समाधान, इस विषयके पूर्वापर सम्बन्ध को देकर किया जाता है,—

विपाक सूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध, प्रथम अध्ययन में लिखा है कि—

मृगा रानी का मृगा नामक पुत्र जन्मान्ध था, उसके शरीर में कुष्टादि कई प्रकारके रोग थे, शरीर से रक्त, पीप, वहता रहता था, और उससे असहनीय दुर्गन्ध निकलती थी, वह खाये हुए आहार को वमन द्वारा वाहर निकाल कर पुनः खा जाता था, ऐसे घृणित कार्यसे व, खासकर उसकी दुर्गन्ध से वचने के लिए ही उसे भूमिघरमें रक्खा था, उसकी माता जव उसके लिये आहार ले जाती थी, उस समय वह दुर्गन्धसे वचने के लिए नाक व मुंह को वस्त्रसे वांध लेती थी, और उसे दूरहीसे आहार देकर पुनः शीघ्र लौट आती थी।

श्री वीर प्रभुसे इस जन्म दुःखी आत्माका हाल जानकर श्री गौतमस्वामी उसे देखने के लिए मृगावती रानी के समीप आते हैं, और अपनी (देखनेकी) इच्छा प्रदर्शित करते हैं। तब मृगावती रानी आहार का समय होजाने से उसके लिए आहार लेकर साथमें श्री गौतमस्वामी को भी ले चलती है। भूमिगृहके द्वार पर जाकर वह स्वयम् वस्त्रसे अपना मुह बांध लेती है, तथा श्री गौतमस्वामी से भी कहती है, कि-भगवन् ? आपभी मुखवस्त्रिका से मुंह बांध लीजिये ?

यह प्रकरण का सार है, इसी पर हमारे मू० पू० भाई हाथमें मुखवस्त्रिका रखना सिद्ध करते हैं। परन्तु जरा सद् बुद्धिसे बिचार करें तो उन्हें मालूम होगा कि—

उस दुर्गन्धमय स्थान में जाते समय मुँह बांधने को कहने का मतलब-ऐसा प्रयत्न करने का था कि—जिससे दुर्गन्ध शरीर में प्रवेश नहीं करसके। वैसे तो-मुखवस्त्रिका के रहते हुए भी बाहर की वायु शरीर के अन्दर प्रवेश कर सकती है, और बिना किसी विशेष रुकावट के आती रहती है। पर दुर्गन्ध से बचने के लिये किसी खास प्रयत्न की आवश्यकता रहती है।

यद्यपि श्री गौतमस्वामी के मुँह पर मुखवस्त्रिका थी, तथापि—दुर्गन्धसे व दुर्गन्ध के कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश करने से-रक्षा नहीं हो सकती थी, इसी लिये तो रानी ने

वस्त्रसे अपना मुंह बांधकर, श्रीगौतमस्वामी से भी ऐसा करने का निवेदन किया था, जिसका यही आशय था कि–मुहपत्ति नाक व मुंहसे चिपकाकर बांधी जाय, जिससे बाहरकी अशुद्धवायु आसानी से शरीर में प्रवेश नहीं कर सके।

यदि यहां कोई यह तर्क करे–कि–मृगा रानी ने जो मुंह बांधा था वहांतो वस्त्रही लिखा है, पर गौतमस्वामी के लिए मुखवस्त्रिका क्यों कही? यहां भी दूसरा वस्त्र विशेष ही कहना चाहिए था? तो इसका समाधान यह है कि—जैन-मुनि अपने पास आवश्यक और अनिवार्य वस्तुए ही रखते है। आवश्यकता से अधिक एक चिंधी भी नहीं रखते, यह सर्व साधारण जानते है, और रानी भी यह बात जानती थी, कि–इनके पास कोई फालतु वस्त्र नही है, इसीलिए उसने मुखवस्त्रिका से ही दुर्गन्ध से बचने के लिए मुंह व नासिका को बांधलेने के उद्देशसे ऐसा कहा।

यहां प्रकरण के विरूद्ध होने पर भी प्रसंगोपात्त एक बात खास ध्यान देने योग्य है, वह यह कि—आज जिस प्रकार मू० पू० साधु अकारण ही कम्बल को कन्धे पर डाले फिरते देखे जाते है, यह पद्धति उस समय नहीं थी। यदि होती तो रानी अवश्य दुर्गन्ध से बचाव करने के लिए उसका उपयोग करने को कहती! क्योंकि—कारण तो सिर्फ दुर्गन्ध से रक्षा करने का ही था, न कि–बोलने या धर्मोपदेश देनेका, इससे

यह पाया जाता है कि-इनकी यह सदव कम्बल कन्धे पर डाल कर फिरनेकी पद्धति नूतन ही है, और यह भी किसी एक के साथ विशेष घटना (चोरी आदि) होजाने से ही प्रारम्भ हुई प्रतीत होती है।

अब पुनः मूल प्रकरण पर आते हैं ;–

इस पर भी यदि कोई शंका करे कि–सूत्रमें तो मुंह बांधने का ही कहा है, नासिका का तो कहा ही नहीं, फिर आप नासिका बांधना कैसे कहते हो ? तो इसके लिए यही समाधान है कि–यह प्रकरण ही विना किसी रुकावटके दुर्गन्धसे रक्षा करने के उद्देश्य को बता रहा है, और दुर्गन्धसे बचने के लिए मुख्यतः नासिका ही को ढकना पड़ता है, तब ही शरीर के अन्दर प्रवेश करने वाली दुर्गन्धमय वायु और उसके कीटाणुओं के रास्ते में रुकावट होती है। और गन्ध जो है वो नासिका ही से आती है, इसके लिये तो दो मत हो ही नहीं सकते क्योंकि—यह शास्त्र व अनुभव सिद्ध बात है। पंच इन्द्रिय के २३ विषय में नासिका के दो विषय सुगन्ध व दुर्गन्ध हैं। ये विषय मुखके तो हैं ही नहीं। न्याय भी कहता है कि—"घ्राण ग्राह्यो गुणो गन्धः" अर्थात् गन्ध घ्राणेन्द्रिय से ग्रहण करने लायक गुण है। प्रत्यक्ष में भी इत्र पुष्पादि नासिका ही से सूंघे जाते हैं, सुगन्ध और दुर्गन्ध की पहिचान भी नासिका ही से होती है। स्वयम् हाथमें वस्त्रिका रखने

वाले साधु भी तो सूंघनी नासिका ही से सूंघते हैं। फिर इसमें विचारकी बात ही क्या है ?

इसलिये सरल बुद्धिसे यह निश्चय समझिये कि—मृगावती रानी के कहने का मुख्य तात्पर्य केवल दुर्गन्ध रक्षार्थ नासिका बांधने का था। पर व्यवहार में उसे नाक बांधना ही कहते हैं। देखिये,—

(अ) स्वयम् मृगावती रानी के लिए भी वहां मुँह बांधने ही का कहा है। पर वास्तव में उसने नासिका को भी बांधा है। क्योंकि—उसे दुर्गन्ध से रक्षा करनी अभीष्ट थी, न कि–धर्मकार्य।

(आ) ज्ञाताधर्मकथांग सूत्रके ९ वें अध्ययन में लिखा है कि–उन माकंदिय पुत्रों ने असाधारण दुर्गन्ध से व्याकुल हो वचाव के हेतु मुँह ढक लिया,। यहां भी मुंह ढकना ही कहा पर मुख्य सम्बन्ध नासिका से ही है।

(इ) डॉक्टर लोग किसी भयङ्कर रोगी के शस्त्र–क्रिया (ऑपरेशन) करते हैं तब वस्त्रसे मुँह व नाक को बांधते है, किन्तु उसे मुँह बांधना ही कहते हैं।

(ई) खरतर गच्छीय व कुछ और भी साधु व्याख्यान के समय नासिका से लेकर मुँह पर कपड़ा बांधते हैं, पर

उसे मुखवस्त्रिका ही कहते हैं। यहां नाकको बांधते हुए भी नाक नहीं कह कर मुख ही कहना सिद्ध हो गया।

(ङ) मूर्ति पूजक गृहस्थ भी पूजा करते समय नाक व मुँह पर ढाटा बांधते हैं, और उसे "मुखकोश" ही कहते है।

इत्यादि पर से स्पष्ट सिद्ध होता है कि—व्यवहार में नाक को बांधते हुए भी नाक बांधना नहीं कह कर मुंह बांधना हा कहते हैं, और इसका मुख्य कारण यह है कि—

एक तो मुख प्रधान अंग है। दूसरा नासिका उसी पर (मुँह पर) है, तीसरा नासिका व मुँहके कोई विशेष अन्तर भी नहीं है, इससे नासिका बांधते समय मुंह भी बांधा जाता है (पर मुँह बांधते समय नासिका नहीं बांधी जाती)। और इसीसे सर्व साधारण का यह व्यावहारिक नियम है कि—जहां कहीं दुर्गन्ध की ओर से निकलने का काम पड़े तो—उस दुर्गन्ध से बचने के लिए नासिका व मुंह दोनों पर कपड़ा लगा लेते हैं। हां, अगर नासिका मुंह पर नहीं होकर किसी अन्य जगह पेट, हाथ या पैर पर होती, और वैसी हालत में मुंह भी बांधते तबतो यह बात भी विचारणीय होती, पर वैसा तो स्वाभाविक नहीं है।

इससे यह अच्छी तरह प्रमाणित होगया कि—मृगावती रानी ने जो श्री गौतमस्वामी को मुखवस्त्रिका से मुंह बांधने

का कहा, वह केवल दुर्गन्धसे बचने के लिए *नासिका ही को, और साथ साथ अति निकट एवम् प्रधान अंग होने से, तथा कीटाणुओं से रक्षा करने के लिए मुँह बांधने का कहा, उसका मुख्य कारण उपर बताए हुए मुहावरे के व्यावहारिक शब्द ही से कहा है परन्तु इससे यह नहीं माना जा सकता, कि श्री गौतमस्वामी के मुंह पर मुखवस्त्रिका नहीं थी, बन्धी हुई तो अवश्य थी, क्योंकि—वे जैन साधुके लिंग में थे, और जैनसाधु के लिग की सर्वप्रथम स्पष्ट एवम् सरलता पूर्वक परिचय देने वाली मुखवस्त्रिका ही है। परन्तु मुखवस्त्रिका के मुंह पर वधी रहते हुए भी उससे दुर्गन्ध का प्रवेशद्वार तो स्पष्ट खुला हुआ ही था। इसीलिए उस द्वार (नासिका) को वन्द करने के लिये ही उसने ऐसा कहा था

इससे एक बात यह भी पाई जाती है कि—श्री गौतमस्वामी के मुह पर जो मुखवस्त्रिका बंधी हुई थी वह ओष्ठ पर ही थी,

---

* ज्ञान सुन्दरजीने भी दुर्गन्ध से बचाव होने का कारण माना है और विशेष में यह भी माना है कि "मुँहपत्ती को तिखुनी कर नाक व मुँहको आच्छादित कर लिया," जैसे कि रानी मृगाने अपना मुँह वांधा था (पृ २७२) इससे तो उल्टा यह सिद्ध होता है कि—मुखवस्त्रिका वधी हुई तो थी, पर रानी की तरह (नाक व मुँह दोनों को त्रिकोन कर) बांधी हुई थी, अतः ऐसा करने का रानीने श्रीगौतमस्वामी से निवेदन किया। इससे हाथमें रखना मानलेना अनुचित एवम् श्रीगौतमस्वामीजी को कुलिंग युक्त मानना है।

नकि–नासिका पर, और इसीलिए रानी को वैसा कहना पड़ा, अन्यथा क्या आवश्यकता थी ? अतएव नाक पर से लेकर बांधने की पद्धति अर्वाचीन (नई) ही प्रतीत होती है ।

(२)

शंका—आचारांग सूत्रमें कहा है कि—साधु छींक, उबासी, डकार, खांसी आदि लेते समय मुह को हाथसे ढकले, फिर यतना पूर्वक वायु निकाले । यदि मुखवस्त्रिका मुखपर बांधना सूत्र सम्मत होता, तो–हाथ से यतना करने का क्यों कहा जाता ?

समाधान—आपकी यह शङ्का भी मत–मत्तता जाहिर करती है । क्योंकि–इस कथन से मुखवस्त्रिका का कोई सम्बन्ध भी नहीं है, फिर भी वह पाठ लिखकर आपकी शंकाका समाधान किया जाता है । देखिए आचारांग सूत्रका वह पाठ,–

से भिक्खुवा भिक्खुणीवा ऊसासमाणे वा, णीसासमाणे वा, कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डुएण वा वायणिसग्गे वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपिहित्ता तओ संजया मेव ऊससेज्ज वा जाव वायणिसग्गं वा करेज्जा ।

आचारांग सूत्र श्रु २ शय्याध्ययन उ. ३ सू. ७१०

अर्थ—वह साधु अथवा साध्वी उच्छ्वास अथवा निच्छ्वास लेते हुए, अथवा खांसी, छींक, जंभाई, उबासी, डकार तथा वायूत्सर्ग, इन क्रियाओं को करते हुए पहले ही

मुखको तथा गुदाको हाथ से ढककर बादमें उच्छवास ले, यावत् वायूत्सर्ग करे।

यहां शास्त्रकार ने उच्छवासादि सात कारणों (प्रसंगों) में मुख व अधो–भागको हाथ से ढकना फरमाया है। इससे भी यही प्रमाणित होता है कि–उस समय यदि हाथमें मुखवस्त्रिका रखने का रिवाज होता, तो—सूत्रकार हाथसे यतना करने का क्यों कहते ? जबकि–मुखवस्त्रिका रखने के प्रधान हेतु में वायु कायादि जीवोंकी रक्षा मुख्य है, तब ऐसे प्रसंगा के लिए हाथसे यतना करने का विधान कुछ और ही महत्त्व रखता है। इसका खास कारण यह है कि–उच्छवास, छींक, उबासी, आदि प्रसंगों पर मुखकी वायु प्रबल वेग वाली हो जाती है, वह मुखवस्त्रिका के मुँह पर होते हुए भी बिना किसी बाधा के वेग पूर्वक निकल जाती है, जिससे वहुत अयतना होती है, उक्त प्रसंगों पर सारा मुँह खुल जाता है, और इतने जोर से वायु निकलती है कि–कई बार कमरमें से धोती की किनार तक टूट जाती है, भला ऐसा प्रवल वायु वेग ओष्ठ पर रही हुई मुखवस्त्रिका की क्या दरकार करे ? बस इसीलिए शास्त्र-कार ने इन २ प्रसंगों पर विशेष यतनाके लिए हाथके उपयोग करनेका विधान किया है, जिससे ठीक तरह यतना होसके।

यदि इस विधानसे मुखवस्त्रिका का मुँहपर होना नहीं मानेंगे तो–आपको अधोभाग भी वस्त्र रहित मानना पडेगा, क्योंकि–वहां भी हाथसे यत्ना करने का कहा है। वस्त्र धारण

करना तो मानना, और जो जैन साधुत्व की प्रधान परिचायिका मुखवस्त्रिका है उसे नहीं मानना कहां की बुद्धिमानी है?

इस व्यर्थ की शंकामे एक बात और भी ध्यान देने योग्य है, वो यह कि—उच्छवासादि सात प्रसंगों में "बोलने" का तो कोई प्रसंग भी नहीं बताया है, इसलिये आपके मतानुसार तो खुले मुँह ही बोलना चाहिए, क्योंकि—इससे तो आपका करवस्त्र (हाथमें रहने वाला वस्त्र) भी उड जाता है?

इसलिये कुतर्कें छोड़ कर जरा सरल बुद्धि से इस प्रकार समझो कि—मुखपर मुखवस्त्रिका तो अवश्य रहती ही है, पर उच्छवासादि प्रसग पर मुखके वायुका वेग अत्यन्त प्रबल हो जाता है उस समय मुखवस्त्रिका के रहते हुए भी पूर्ण यत्ना नहीं हो सकती, इसलिये ऐसे प्रसंगों पर हाथ से विशेष यत्ना करना ही उचित है।

ज्ञानसुन्दरजी? प्रसन्न होने की बात तो जब होती कि—आचारांग में बोलने का प्रसंग भी बताया गया होता, व साथ ही यत्ना के स्थान "पाणिणा" के साथ साथ पाणिणा-मुहणंतगेण, या—मुहणंतगेण ही होता। पर उस समय हमारे हस्तवस्त्री महानुभावों का सद्भाव ही नहीं था, अन्यथा ऐसे अवसरों पर ये कहां चूकने वाले थे? अतएव इससे सिद्ध हो गया कि आचारांग का नाम लेकर हाथ में मुखवस्त्रिका रखना सर्वथा अनुचित है।

(३)

शंका—श्री ज्ञानसुन्दरजी ने हाथमें मुखवस्त्रिका रखने के पक्षमें भगवती सूत्र का प्रमाण दिया है, इसका क्या उत्तर है ?

समाधान—भगवती-सूत्रका नाम लेकर हाथमें वस्त्र रखने को कहना भी भूल है भगवती सूत्र में श्री गौतमस्वामी के प्रश्न करने पर श्रमण भगवन्त श्री वीर प्रभुने फरमाया कि–जब शक्रेन्द्र मुख पर वस्त्रादि रखकर बोलता है, तो वह निर्वद्य भाषा बोलता है, और वस्त्रादि रहित खुले मुँह बोलता है, तब सावद्य भाषा बोलता है।

श्री गौतमस्वामीजी के इस प्रकार के प्रश्न का यही आशय है, कि—हम जो साधु हैं सो तो सदैव मुखवस्त्रिका मुखपर बांधी रखते है, जिससे वायुकायादि जीवोंकी दया होती है। परन्तु शक्रेन्द्र कभी तो वस्त्र से यत्ना करके बोलता है, व कभी, वैसे ही खुले मुँह भी बोलता होगा, क्यों कि—यह तो हमारी तरह मुखवास्त्रका धारण नहीं करता है, तब इसकी भाषा कैसी कही जायगी ? ठीक इसी विचार से यह प्रश्न उपस्थित हुआ मालूम होता है, जिसका प्रभुने पूर्वोक्त उत्तर दिया है। प्रभुने वहां देवेन्द्र का लिहाज नहीं कर स्पष्ट फरमा दिया कि—जब शक्रेन्द्र वस्त्रादि से यत्ना कर बोलता है, तभी वह भाषा निर्वद्य हो सकती है, अन्यथा सावद्य।

भला ऐसे कथन से ज्ञानसुन्दरजी किस प्रकार हाथमें वस्त्र रखना सिद्ध करते हैं ? इस से तो उल्टा इन्हें यह उपदेश प्राप्त करना चाहिए कि—जब अविरति गृहस्थ देवेन्द्र होते हुए भी निर्वद्य भाषा के लिए वस्त्रादि से मुँहकी यत्ना करके बोलता है, तब हम तो साधु हैं, सर्वथा दया पालना ही हमारी प्रतिज्ञा है, हमें तो अपनी प्रतिज्ञा का पूर्ण रूपसे पालन करने के लिए मुखवस्त्रिका मुँह पर धारण करनी ही चाहिए, जिससे एक तो जीवों की दया रूप प्रतिज्ञा के पालक बनें, और दूसरा जैन साधु का लिंग भी हमारा कायम रहे, जिसके अवलोकन करने से भव्य जीवों के हृदय में जैनधर्म के प्रति श्रद्धा एवं अहिंसा के प्रति प्रेम उत्पन्न हो, इस तरह संसार का भी कुछ उपकार हो। पूर्व इतिहास भी कहता है कि—साधु को देख लेने से ही कइयों को वैराग्य प्राप्त हुआ और उन्हाने क्रमशः अपना आत्म कल्याण भी कर लिया। यह बिना मुखवस्त्रिका के कैसे हो सकता है ? नग्न सिर व हाथमें दंड झोली आदि तो अन्य सम्प्रदाय के साधु लोग भी रखते है, पर मुख्यतः एक मुखवस्त्रिक जो मुँह पर बन्धी रहती है, ऐसी है कि—जिससे दूरसे ह जन साधुत्त्व का परिचय मिल सके।

अतएव भगवती सूत्रका नाम लेकर मुखवस्त्रिका हाथमें रखना नितांत अनुचित है।

(४)

शङ्का—श्री ज्ञानसुन्दरजी ने एक प्रमाण फिर आचारांग का दिया है उसमें यह बताया है कि—"वस्त्र रहित रहने वाला साधु ऐसा विचार करे कि—मैं तृण, शीतोष्ण, दंस, मशग, आदि परिषह तो सहन करलूंगा पर गुह्य प्रदेश (पुरुष चिन्ह) की लज्जा रूप परिषह को सहन करने में असमर्थ हूं, ऐसे साधु को एक कटिबन्ध रखना कल्पता है" इस प्रमाण परसे सुन्दरजी ने यह तर्क की है कि—

सूत्रम तो केवल एक कटिबन्ध रखना कहा है तब आप के मुँहपत्ति का डोरा कहां रहा ? इसका क्या समाधान है ?

समाधान—ऐसी मिथ्या तर्कें ही अपने कर्ताका पक्ष व्यामोह सिद्ध करती है। देखिये—

यह आचारांग का वचन केवल लज्जा निवारण के लिए वस्त्र रखने का विधान विशेष क्रिया रूप से ही करता है। इससे तो कोई यह भी तर्क कर सकता है कि—कटि वस्त्र के सिवाय अधिक वस्त्र रखना भी अनुचित होगा ? पर यह तो हमारे तर्ककर्ता सुन्दरजी को भी मान्य नहीं है। और इससे तो इनका हाथम वस्त्र रखना भी उड़ जाता है। फिर इन्हें यह कर—वस्त्र भी त्याग देना चाहिये, क्योंकि—इस सूत्र से तो यह भी रखना सिद्ध नहीं होता।

सुन्दरजी को मुखवस्त्रिका के प्रति अपने वैर भावको छोड़ कर शांत एवम् शुद्ध हृदय से विचार करना चाहिए

कि—सूत्रकारने विधिवाद में साधुसाध्वीओं के-पछेवड़ी चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका आदि रखने की आज्ञा दी है, यह सूत्र तो अपवाद रूप विशेष शक्ति वालों के लिये अचेलक आदि विशेष क्रिया का ही प्रतिपादक है फिर भी वहां धार्मिक उपकरण व खासकर साधु वेष को बताने वाले मुखवस्त्रिका-दिका अभाव नहीं होता, केवल परिषह सहन ही इसका मुख्य उद्देश्य है, और मुखवस्त्रिका जो मुंह पर बांधी जाती है, इससे भी कष्ट (परिषह) तो होता ही है। अतएव यहां धार्मिक उपकरण को उड़ाने के लिये उक्त सूत्रकी साक्षी देना सत्य का खून करना है? वैसे तो श्री सुन्दरजी ने भी प्रश्न व्याकरण का प्रमाण देकर मुखवस्त्रिका रखना मान्य किया है, फिर ऐसा प्रमाण (जो मुखवस्त्रिका के लिए लागु नहीं होता) देने से क्या लाभ है? इससे तो इन का हाथमें वस्त्र रखना भी उड़ जाता है। फिर इसमे तो इन्होने केवल "डोरे" से ही द्वेष प्रदर्शित किया है, वह सर्वथा अनुचित है। ऐसी थोथी दलील से इनका अभीष्ट कदापि सिद्ध नहीं हो सकता। उल्टी मतोन्मत्तता (मत का उन्माद) ही टपकती है।

(५)

शंका—अङ्ग चूलिया सूत्र का प्रमाण तो स्पष्ट हाथमें मुख वस्त्रिका रखने का विधान कर रहा है, जिसको श्री ज्ञान सुन्दरजीने दिया है, इस विषयमें आपका क्या समाधान है?

समाधान—इस शंका का समाधान तो स्वयम्-सुंदरजीने

ही कर दिया है, वे लिखते हैं कि-यह सूत्र स्था० को मान्य नहीं है इस लिए इसका प्रमाण देना ही अनुचित है। हमारी तो दृढ मान्यता है कि-कोई भी ग्रंथ क्यों न हो, उसका जो वचन वीतराग वाणी को बाधा कारक नहीं हो वही हमारा मान्य है। कितने ही शास्त्रोंमें अनिष्ठ परिवर्तन हुवा है जिसका प्रमाण मैंने " लोंकाशाह मत समर्थन "नामक पुस्तकमें दिया है। खास अंगोपांग में ही जब मन माना फेरफार कर दिया गया है तो अन्य की तो बात ही क्या है ? यहां प्रकरण विशेष बढ़ जाने के भयसे हम उन प्रमाणों को नहीं लिख रहे हैं।

प्रमाण वही उचित हो जो उभय समाज सम्मत हो, हमने भी ऐसे ही प्रमाण और खास कर हमारे प्रतिस्पर्धी (हाथमें वस्त्र रखने वाली) समाज के ही दिये हैं।

अतएव केवल एक पक्ष के ही मान्य तथा सदोष ऐसे प्रमाण कुछ भी कार्य साधक नहीं हो सकते।

(६)

शंका—तुम्हारे मान्य ३२ सूत्रों के अन्दर दशवैकालिक सूत्र है, उसमें मुखवस्त्रिका को "हत्थग" कहा है, इससे हाथमें रखना सिद्ध होता है, इसको आप कैसे अमान्य कह सकते है ?

समाधान—यह शंका भी अज्ञपन, या मत मोहसे प्रेरित हो कर ही की गई है। क्यों कि-दशवैकालिक सूत्र के उस प्रमाण से मुखवस्त्रिका का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। यह

"हत्थग" शब्द दशवै० सूत्र के पांचवे अ० प्रथमोद्देश की ८३ वीं गाथामें आया है। उस सारी गाथा को यहां लिख-कर समाधान किया जाता है,—

अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छिन्नंमि संवुडे।
"हत्थगं" संपमज्जिता, तत्थ भुंजिज्ज संजए ॥८३॥

अर्थ—बुद्धिमान् साधु गृहस्थ की आज्ञा ले कर ढके हुए स्थानमें उपयोग सहित प्रमार्जनी (पूंजनी-रजोहरणी) से शरीर के हाथ पांवादि अवयवों को सम्यक् प्रकारसे प्रमार्जन कर वहाँ भोजन करे।

इस गाथामें जो "हत्थग" शब्द आया है वह हाथ आदि अवयवों को प्रमार्जनी से पूंजने के अर्थ को बताने वाला है, और यही अर्थ यहां उपयुक्त एवम् प्रकरण के अनुकूल भी है, क्यों कि—वहां हाथ आदि को प्रमार्जन करने की आव-श्यकता है, न के बोलने की, उल्टा उस समय तो मुखवस्त्रिका को मुँहसे पृथक् करना पडता है। कारण भोजन समय का प्रसंग है और प्रमार्जन क्रिया जो है वह प्रमार्जनी से ही होती है, मुखवस्त्रिका से प्रमार्जन करने की तो कोई विधि ही नहीं है। टीकाकारने जो 'हत्थग' शब्द का अर्थ—मुखवस्त्रिका किया है, यह केवल अर्थ का अनर्थ ही मालूम होता है। मुखवस्त्रिका को किसी भी स्थान पर 'हत्थग' नहीं कहा है। इस तरह शब्दों की खींचतान कर अपना पक्ष जमाना निष्फल प्रयास ही है।

(७)

शंका—श्रीमान् ज्ञानसुन्दरजीने आवश्यक सूत्र का अवतरण दे कर जो हाथमें मुंहपत्ति रखना सिद्ध किया है, उस का क्या उत्तर है ?

समाधान—श्री ज्ञानसुंदरजीने स्व० पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज से अनुवादित आवश्यक सूत्र के " कुइए कक्कराईए छीए " का अवतरण दे कर यह सिद्ध करना चाहा है कि–यदि मुखवस्त्रिका मुख पर होती, तो–ऐसा प्रसंग ही क्यों आता, इस विषयमें–आपको यह समझना चाहिए कि–साधुओं को कितने ही प्रसंगों पर मुखवस्त्रिका मुँहसे अलग भी करनी पडती है। जैसे भोजन करते समय, पानी पीते समय, दवाई लेते समय या अन्य ऐसे ही किसी प्रति लेखना आदि प्रसंग पर मुखवस्त्रिका मुँह से दूर की हो और हठात्–बोलने आदि का काम पड़ जाने से, उस समय यदि खुले मुँह बोला गया हो, ऐसे ही रात्रि में निद्रा लेते प्रमादवश मुखवस्त्रिका मुँहसे हट गई हो, और अचानक कभी ऐसा प्रसग बना हो, उसके लिए यहां मिथ्या दुष्कृत्य दिया गया है। ऐसे प्रमाद के कार्यों का उदाहरण देकर हाथमें वस्त्र रखने की सिद्धि करना सत्यसे सर्वथा दूर है। क्यों कि आपको तो प्रमादी हालत के प्रमाण ही अभीष्ट है।

(८)

इसी प्रकार प्रत्याख्यान प्रसंग में आए हुए "अन्नत्थणा

भोगेणं, सहसागारेणं" शब्द से भी जो भ्रम फैलाया गया है, उसके लिए भी सुंदरजी को यही समझना चाहिए कि– ऐसे प्रसंग, प्रमादावस्था से उपस्थित होते हैं।

ऐसा कई बार देखने सुनने व अनुभवमें आया है कि– प्रमाद के कारण व्रतका स्मरण नहीं रहने से जिस वस्तु का त्याग किया गया है वो (या उपवासादि प्रसग में कोई) वस्तु अचानक मुंहमें डाल दी जाती है। और फिर व्रत का स्मरण होता है तब पश्चात्ताप होता है।

ठीक ऐसे ही प्रसंग का यह आगार है, इसमें इसी तरह समझना होगा कि—

यदि किसी साधुने कुछ व्रत (उपवासादि) किया हो, और भिक्षाचरी के समय अन्य गुर्वादि साधुओं के लिए आहारादि लाया हो और सदैव के अभ्यास (मुहावरे) के कारण व्रत का स्मरण नहीं रहने से भोजन करने बैठा ही और कुछ त्यागी हुई वस्तु मुंहमें डाल भी लिया हो अथवा एक पात्र का दूसरे पात्र में दूध–दाल–पानी आदि परिवर्तन करते समय उस प्रवाही वस्तु का छींटा उड़कर मुंहमे गिर गया हो तो वैसे प्रसंग का यह आगार बताया गया है। ऐसे प्रसंगों का सहारा लेकर अपनी सिथिलाचार रूपी खुले मुँह रहने की प्रवृत्ति को शास्त्र सम्मत कहना मानो डूबते हुए को तिनके का सहारा लेना है। ऐसा प्रयास सदा निष्फल ही सिद्ध होता है।

(९)

वैसे ही दशवैकालिक की अनाचार सम्बन्धी व्याख्यामें दंतधावन और दर्पण में मुंह देखने आदि के अनाचार विषयक कुतर्क की गई है।

ज्ञान सुन्दरजी को मुखवस्त्रिका हाथमें रखने का जब सूत्र मान्य कोई प्रमाण नहीं मिला, तब ऐसे अनाचारों का नाम लेकर आपने अपना पक्ष कुछ समय के लिए कायम रखने को स्वमान्य समाजमें वाह वाही प्राप्त करने की चेष्टा की है, पर शायद आप यह भूले हुए हैं, कि—अनाचार तो अनाचार (जो आचरण करने योग्य नहीं हो) ही है, जो इन का सेवन करेगा वह अनाचारी ही होगा, तथा इनका सेवन मुखवस्त्रिका के होते हुए भी हो सकता है। इसके लिए बांधने न वांधने का कोई प्रश्न नहीं हो सकता, क्योंकि हड्डी मांस त्वचा आदि को सुख उपजाने के लिए जिस प्रकार तेलादि का मर्दन करना पूर्व के अनाचार मे बताया है, वह किसी को दीखाने के लिए नहीं, पर शरीर को साता पहुंचाने के लिए है, ऐसे ही, दंत धावन भी मुंह और दांतो को विशेष रूपसे शांति पहुंचाने या पुष्टि करने के निमित्त करना अनाचार बताया है। इसमे मुंहपत्ति बांधने व खोलने का प्रश्न ही [illegible] उपस्थित हो सकता है? और जो काचमें मुह देखने के [illegible]यमें आपकी शंका हो तो—यह भी निरर्थक है, क्योंकि यह तो मुखवस्त्रिका के वंधी हुई होते हुए भी हो सकता है।

दूसरा जो अनाचार का सेवन करेगा वह प्रायः किसी के देखते तो करेगा नहीं, अगर गुपचुप जिसे अनाचार सेवन करना है वह मुखवस्त्रिका रखकर या छोड़कर करे, इसकी चिन्ता हम क्यो करें ? सूत्रकारने तो ऐसा करना अनाचार बताया है जो छोड़ने योग्य है। अतएव अनाचारों के उदाहरण शुद्ध क्रिया में देकर भ्रम फलाना सुज्ञजनो का कार्य्य नहीं है। यह तो आप जैसे को ही शोभा दे सकता है।

(१०)

इसी प्रकार निशीथ सूत्र में मुंह व दांत से वीणा नामक वादित्र जैसे बनाकर बजाने के प्रायश्चिताधिकार में भी कुतर्क की गई है, यह सर्वथा अनुचित है। क्योंकि—यह मुखवस्त्रिका के होते हुए भी हो सकती है। इसमें मुखवस्त्रिका कोई खास बाधा नहीं पहुँचाती, और दोष सेवन करने वाला —जिसे शुद्ध-संयम-पालन करने का प्रेम ही नहीं है, वो यदि मुखवस्त्रिका खोलकर भी ऐसे दोषों का सेवन करे तो-भी इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योकि वहां तो प्रायश्चित कहा है। इसलिए ऐसी निरर्थक वातों का प्रमाण देना, स्वयम् प्रमाणो का अभाव सिद्ध करना है।

(११)

और निशीथ सूत्रके पांचवे उद्देशे में विभूषा के लिए दांत घिसने का जो दंडनिर्माण किया है, उससे भी

हाथमें वस्त्र रखना सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि—इसी सूत्रमें आगे चलकर गुह्य-प्रदेश की शोभा बढ़ाने के सम्बन्ध में भी वर्णन आता है, अगर विभूषा का अर्थ लोकों में शोभा प्रदर्शित करना ही किया जायगा तो-दांतों पर तो फिर भी साम्प्रदायिक साधुओं की दृष्टि पड़ सकती है किन्तु गुप्तांग का सम्मार्जन किसे दिखाने के लिये है ? फिर यहां विभूषा कैसी ? इस विषय मे तो आपको नग्नता ही माननी पडेगी, तभी गुप्तांग की शोभा का प्रायश्चित विधान सच्चा हो सकता है ? महाशय ? जरा, गीतार्थों से सूत्र रहस्य समझो, और फिर अन्यको समझाने बैठो, अन्यथा-"लेने गई पूत, और खो आई खसम" वाली कहावत चरितार्थ होगी। अतएव इस तर्क में भी कोई तथ्य नहीं है।

(१२)

अब इनके दशवैकालिक के दूसरे प्रमाण पर विचार करते हैं। इन्होंने जय भुंजंतो "भासंतो" शब्द पर से ही अपने करवस्त्र की सिद्धि मान ली है, यह प्रत्यक्ष में भाषा समिति-विषयक अज्ञता सिद्ध करती है। इनको यतना पूर्वक बोलने के विधानों के शास्त्रों में स्पष्ट एवम् विस्तार पूर्वक जो कथन है देख लेना चाहिये। उससे मालूम हो जायगा कि यत्ना पूर्वक बोलना किसे कहते हैं, इन्होंने इसका अर्थ करने में जो अपनी संकुचित वृत्ति प्रकट की है वह हास्यास्पद ही है। इन्हें यत्ना पूर्वक बोलने का अर्थ इस प्रकार समझना

चाहिए कि—जिससे वो अर्थ सिद्धान्त निर्दिष्ट सभी विधानों को लागु हो सके। यदि संक्षेप में इस वाक्य का अर्थ किया जाय तो निम्न प्रकार से हो सकता है,—

१ यत्ना पूर्वक वह भाषा कि-जो वितराग वचनों से सम्मत और जैन शासन का प्रभाव फैला सके।

२ यत्नापूर्वक वह भाषा कि—जिससे किसी भी प्राणिका अनिष्ट न हो, और न किसी के हृदय में चोट पहुंचे।

३ यत्ना पूर्वक वह भाषा कि—जिससे गुरुओं का निरादर न हो।

४ यत्ना पूर्वक वह भाषा कि-जिससे संसार रत जीवों का उत्थान और कल्याण हो।

५ यत्ना पूर्वक वह भाषा जो—अमंगल में-मगल, अशांति में शांति, एवम् क्लेश के स्थान संप स्थापन करें।

इत्यादि अनेक अर्थ हो सकते हैं। ऐसे अनेक शुभ अर्थ प्रकाशक शब्द का केवल अपने मतकी सिद्धि करने के लिए मनमाना संकुचित अर्थ कर डालना प्रत्यक्ष पक्ष व्यामोह है।

अतएव "जयं भुञ्जन्तो भासन्तो" शब्द से हाथमें वस्त्र रखना कदापि सिद्ध नहीं हो सकता।

(१३)

शङ्का—ज्ञानसुन्दरजी ने लिखा है कि—दिन भर डोरा डाल मुँहपत्ती बांधने वालों को शासन-भंजक, निन्हव,

कुलिंगी, समझते हैं, तो इस विषय में आप हमेशा मुँहपत्ति मुँह पर बांधना, और वह भी डोरे से, और जैनलिंग के लिए क्या इसको पृथक् २ सिद्ध कर सकते हैं ?

समाधान—हां, महाशय ? हम सिद्ध तो कर चुके हैं, और फिर भी कर सकते हैं, पर ज्ञानसुन्दरजी ने हमारी समाज पर जो प्रेम एवम् सहृदयता प्रकट की है, वह तो उनके योग्य ही है। क्यो कि—हमारी समाज में ये महानुभाव रह चुके हैं, और इसीके अन्नजल से इनकी देह बढ़ी है तीसरा ज्ञानदान भी इन्हें इसी समाज के खजाने से प्राप्त हुआ है। यदि इसके उपलक्षमें ज्ञानसुन्दरजी अपशब्द-गालियां प्रदान नहीं करें तो-क्या करें ? कुछ वदला तो चुकाना ही चाहिये ? महाशय ? आपको ध्यान रहे कि— ज्ञानसुन्दरजी जो कुछ कह रहे है वो केवल, आन्तरिक द्वेषके कारण ही। क्यों कि—साधुमार्गीय समाज से इन महाशय को (चरित्रहीनता के कारण) विदाई मिली है। भला, उस वैर का वदला गाली प्रदान द्वारा नहीं लें तो, फिर क्या करें ? अब आप अपने प्रश्नका उत्तर क्रमसे लीजिये,—

दिन भर मुखवस्त्रिका बांधना—

जबकि—हमेशा मुखवस्त्रिका हाथमें रखने वालों के मान्य सिद्धान्तों में मुँह की वायु से बाहर की वायुकाय की हिंसा होना सिद्ध हो चुका है, और मुखपर मुखवस्त्रिका बांधना भी सिद्ध हो चुका है, फिर ऐसी शंकाओं के लिये तो

स्थान ही कहां ? फिर भी प्रकरण की विशेष पुष्टि और शंका के विशेष समाधान के लिये कुछ और बता देना उचित है, देखिये,—

यहतो–आप जानते ही हैं कि—मुह से वायु तो निकलती ही रहती है, उसके निकलने का कोई नियत समय तो है ही नहीं, ऐसी हालत मे हमेशा मुंहपत्ति नहीं बांधने से पूरी यत्ना किस प्रकार हो सकती है ?

दूसरा, नहीं बांधकर हाथमें रखने वाले भी निम्न लिखित प्रसंगों पर तो बांधना स्वीकार करते ही हैं। देखिये,-

"मुहपत्ति चर्चासार" में रत्नविजयजी गणि पृ. ४० पंक्ति ७ से लिखते हैं कि—

यद्यपि खास बांधवाना प्रसंगोनु चोक्खुं नकी तारण कदाच आपणे न काढी शकीए तो पण सामान्य सिद्धांत ए तारवी शक्या के ज्यारे ज्यारे बांध्या विना उपरना प्रयोजनो बरोबर सिद्ध न करी शकाय, त्यारे त्यारे बांधवीज जोइए, ते बांधवाना प्रसंगोमां खास करीने नीचेनी बाबतोनो समावेश थशेः—

१. स्वाध्याय—

१ वाचना	३ वसति प्रमार्जन
२ पृच्छना	४ स्थंडिल गमन
३ परावर्तना	५ व्याख्यान प्रसंग

४ धर्मकथा 6 मृतक ने, विगेरे,

२ पडिलेहणा—

१ पात्र पडिलेहणा
२ स्थापना पडिलेहणा
३ उपधि पडिलेहणा
४ ओघानी पडिलेहणा

उपरोक्त प्रमाण से यह सिद्ध हो गया कि—वाचना, पृच्छा, परिवर्तना, धर्मकथा, प्रतिलेखना, प्रमार्जना, स्थंडिल-गमन, व्याख्यान प्रसंग, आदि में मुखवस्त्रिका अवश्य बांधनी चाहिये।

यद्यपि उक्त प्रसंगों पर बांधना और बाकी के समय में हाथमें रखना, ऐसा लेखक का अभिप्राय हो सकता है, तथापि लेखक यह तो स्वीकार करते हैं कि—"अभी यह निश्चय अपूर्ण ही है" लेखक के ये शब्द ही कह रहे हैं कि—अभी इसमें, और विचार करने की आवश्यकता है, देखिये, वे शब्द—'यद्यपि खास बांधवानां प्रसंगोनु चोक्खुं नक्की तारण कदाच आपणे न काढी शकिए" ये शब्दही उपरोक्त प्रसंगों के सिवाय भी बांधने की गुंजाइश बताते हैं।

इतने प्रसंगो पर तो बांधना इन्हें भी स्पष्ट स्वीकार है, फिर भी ये लोग इन सब प्रसंगो पर नहीं बांधते हैं, इससे तो यही पाया जाता है कि—ये लोग मतमोह एवम् सिथिलता

में पड़ कर संयम तथा चारित्र के प्रति उपेक्षा ही करते हैं।

अब हमारे पाठक ही सोचें कि—उक्त प्रसंगों के सिवाय बाकी क्या, व कौनसा कार्य वा समय ऐसा रह जाता है, जिसमें मुखवस्त्रिका बांधे बिना रहा जाय? जो लोग मुखसे निकलती हुई वायु से बाहर की सचित्त वायुकाय की हिंसा होने की मान्यता रखते हैं उनके लिये भोजन पानके सिवाय ऐसा कोई भी समय नहीं है कि—वे खुले मुंह—बिना मुखवस्त्रिका बांधे रह सकें!

बांधने के उक्त प्रसंगों के सिवाय अब मुख्यतया चार प्रसंग और रह जाते हैं,—एकतो भिक्षाचरीगमन, दूसरा ध्यान,

---

सरे बाजार कई हस्त वस्त्री साधुओं को खुले मुंह बोलते देखा गया है अतएव ऐसे समय भी मुखवस्त्रिका मुंह पर बांधी रहनी चाहिए।

*ता. १० अक्टोंबर सन् १९३७ की बात है जब यह लेखक स्वयम् अहमदाबाद गया था वहां अन्य दोस्वधर्मियों के साथ .. गच्छ के उपाश्रयमें भी गया, वहां . के वृद्ध आचार्य निंद्रा ले रहे थे, और खुले मुंह खुर्राटे भर रहे थे, उस समय हमने उनके एक साधु के साथ लगभग २०–२५ मिनिट तक वार्तालाप किया मगर उन महानुभाव की मुखवस्त्रिका के दर्शन हमे उनके कमर मे—पहने हुए चोल पट्टक मे खोंसे हुए हुआ और उस समय दूसरे एक साधु अन्य गृहस्थ से वार्तालाप कर रहे थे, पर वहां भी हस्त वस्त्र के उपयोग का अभाव ही था। इस प्रकार मुखवस्त्रिकाकी ये लोग दुर्गति करते हैं।

कायोत्सर्ग, तीसरा शयन और चौथा प्रतिक्रमण । क्या इन प्रसंगो पर भी मुखवस्त्रिका बांधने की आवश्यकता है? इस पर भी थोडा बिचार किया जाता है,—

(१) जब गौचरी (भिक्षाचरी) के लिए साधु जाते हैं, तब मार्गमें चलते समय यदि उनके मुंह पर मुखवस्त्रिका होती है तबतो उनका परिचय अपने आप अन्य मतावलम्बियों को हो जाता है, मुखवस्त्रिका के मुंह पर होने से वे पहिचान लेते हैं कि–ये जैन साधु है, परन्तु मुखवस्त्रिका मुह पर नहीं होकर हाथमें ही हो तो वह जैन लिंगकी परिचायिका नहीं ठहर सकती, क्योंकि– वैसे हाथमें तो प्रायः कई सम्प्रदायके साधु कपड़ा आदि रखते हैं ।

दूसरा यह देखने में आया है कि–सम्वेगी साधु जब भिक्षा ग्रहण करते हैं तब एक हाथ में तो उनके दंड और झोली रहती है. दूसरे हाथसे वे भिक्षादाता को कम लेने व नहीं लेने का लम्बा हाथ कर इशारा करते हुए साथही थोडा थोड़ा, या नहीं नहीं, ऐसा मुंह से कहते जाते हैं, यह सब खुले मुंह ही होता है । यदि मुह पर मुखवस्त्रिका बधी हुई हो तो ऐसी अयत्ना कदापि नहीं हो सकती ।

अतएव भिक्षाचरी को जाते समय भी मुखवस्त्रिका–लिंग परिचय एवम् जीवोकी यत्ना के लिए अवश्य बधी हुई होनी चाहिए ।

(२) अब ध्यान–कायोत्सर्ग के प्रसंग पर विचार करते हैं। जिस समय कायोत्सर्ग होता है, उस समय ये लोग अपने दोनों हाथों को दोनों जंघाओं पर खुल्ले फैला देते है, कायोत्सर्गमें शरीर भी स्थिर रखना पडता है, ऐसे (कायोत्सर्ग करते) समय यदि किसी अन्यमतावलम्बी की इन पर दृष्टि पड जाय तो, इन्हें कोई जैन साधु नहीं जान सकता। दूसरा, कायोत्सर्ग पालते समय भी असावधानी से अयत्ना हो जाना सम्भव है।

(३) शयन के बाद निद्रा लेते समय मुखवस्त्रिका मुंह पर नहीं बांधने वालेसे किस प्रकार यत्ना हो सकती होगी? श्वासोच्छ्वास के सिवाय खांसने आदि की भी प्रवृत्ति अकस्मात् हो जाती है और मुखवस्त्रिका उससमय यातो सिरहाने या अन्य कहीं विराजमान रहती है– तब ऐसे समय तो अयत्ना अवश्य होती है। इसलिए इस समय भी मुखवस्त्रिका अवश्य मुंह पर बंधी रहनी चाहिए।

(४) प्रतिक्रमण करते समय भी मुखवस्त्रिका मुखपर रहनी आवश्यक है। क्योकि जब वन्दना नमस्कार किया जाता है और शक्रस्तव करते समय दोनों हाथ घुटने पर जोडे हुए रख कर मस्तक झुकाकर पाठ उच्चारण किया जाता है, एवम् खमासमणा देते हुए आवर्त करते समय मुखसे पाठ उच्चारण

और हाथोंसे आवर्तन किया जाता है। उस समय हाथमें रही हुई मुखवस्त्रिका यत्ना के कार्य में अनुपयोगी ही सिद्ध होती है, और अयत्ना हो ही जाती है, ऐसे समय में यदि मुखवस्त्रिका मुंहपर बन्धी हुई हो तो यत्ना अच्छी तरह से हो सकती है। अन्यथा नहीं।

इस तरह दूरदर्शी हो कर यदि विचार किया जाय तो यही निश्चय होता है कि—मुखवस्त्रिका को सदैव मुखपर बांधना ही उचित है। जो लोग मुहपर मुखवस्त्रिका नहीं बांधते हैं वे न तो वायुकायादि जीवो की यत्ना ही कर सकते है। और लिंग रहित होने से, न जैन साधु ही कहे जा सकते है।

जो महाशय मुखवस्त्रिका को मुंहपर नहीं बांधते हैं वे पूर्वार्ध में बताए हुए प्रमाणो और उनके आचार्यों के उद्गारो को पढ़कर यदि शांत भावसे विचार करेंगे तो उन्हें अवश्य विश्वाश होगा कि–मुखवस्त्रिका मुंहपर सदैव बांधना उचित ही है। अगर वे मतमोहसे इतना नहीं कर सकें तो कम से कम अपने आचार्यों के निर्देश किये हुए प्रसंगों पर तो मुखपर मुंहपत्ति बांधकर धार्मिक क्रियाओं में होने वाली उतनी हिंसा से अवश्य बचेंगें ऐसी आशा है।

महानुभावों ? यदि सदैव बांधने के कष्ट से डरकर हमेशा मुखवस्त्रिका नही बांधसको तो–कमसे कम उक्त प्रसंगो परतो अवश्य बांधो, और सदैव बाधने वालों की निन्दा तो मत

करो ? सदैव बांधने वालों को आदर की दृष्टि से देखकर उनका अनुमोदन करो, और वैसी क्रिया करने की भावना रक्खो ? जिससे मिथ्यात्त्व रूप पापसे तो बचे रहोगे, क्योंकि स्वयम् सागरानंद सूरि लिखते है कि—"निरवद्य भाषानी प्रतिज्ञा वाला छतां जो मुंहपत्तिने न माने तो मिथ्यात्त्वी बने" अतएव मिथ्यात्त्व रूपी आस्रव से बचने का अवश्य प्रयत्न करिये। अन्यथा ध्यान रहे कि—असत्य प्रचार में अपनी शक्तिका दुरुपयोग कहीं परभव पीडाकारी शूल न होजाय।

मुंहपत्ति में डोरा डालना—

जहां मुखवस्त्रिका मुंहपर बांधना सिद्ध है वहां यह शंका ही अनुचित है कि—मुखवस्त्रिका डोरे से क्यों बांधी जाय ? फिर भी इस सम्बन्ध में विचार किया जाता है—

मुखवस्त्रिका होतो तो वस्त्र की ही है, और वह भी आठ पत वाली, बाधी भी कानों से लेकर ही जाती है, तब बांधने के लिए किसी दूसरी चीज की आवश्यकता होती ही है। वह वस्त्र, सूत, या डोरी के सिवाय अन्य क्या हो सकता है ? उसमें भी वस्त्र की चिंधी (लीरी) तो चपटी और जल्दी फट जाने वाली होती है। वारवार इसकी याचना भी करनी पड़े, इसलिये इस कार्यमें वटे हुए सूत की डोरी ही अधिक उपयोगी हो सकती है। अन्यथा आठ पत वाली मुहपत्ति कैसे बन्ध सकती है ?

खरतर गच्छीय साधु व्याख्यान के समय जो नासिका से मुखवस्त्रिका बांधते हैं, वे भी कानों में ही पिरोते हैं। परन्तु वे मुखवस्त्रिका ही के कपडे से उसे बांधते ह। जिससे वह आठ पत वाली नहीं रहती, इसलिये मुंहकी वायुका वेग उतना कम नहीं हो सकता, जितना आठ पतवाली से होता है अतएव आठ वाली मुखवस्त्रिका ही मुंहपर बांधनी उचित है। प्रमाण के लिए देखिए,--

(१) भगवती सूत्र श. ७ उ. ३३ में जमालिके दीक्षाधिकार में ऐसा उल्लेख है कि--

"सुद्धाए अट्ठपडलाए पोत्तिए मुहं बंधई"

जोभी यह पाठ गृहस्थ नाई के सम्बन्ध का है, तथापि इससे यह तो सिद्ध हो सकता है कि--उस समय भी आठ पत वाली ही मुखवस्त्रिका मुंहपर बांधी जाती थी, दूसरी वात यह भी मालूम होती है कि--जब व्यावहारिक केश कर्तन के कार्यमें थूकके कणों व मुंहके श्वास का बचाव करने के लिए भी आठ पत के विना उद्देश्य सिद्धि नहीं हो सकती, तो-वायु जैसे सूक्ष्म की रक्षा करने के लिए तो आठ पत वाली होनी ही चाहिये।

(२) "आचार दिनकर" में लिखा है कि--वितस्तिश्च त्वारोङ्गुलाश्च, एतच्चतुरस्र मुखवस्त्रिका प्रमाणम्। तस्य समाचरणा वक्त्रस्यपालिं वामतो विधाय, ततः परं

मञ्जनेन द्विगुणं कुर्यात, पुनस्ततोपि द्विगुणम्, ततः तिर्यग् भङ्गनाष्ट-गुणं कुर्यात् ।

एक वेंत और चार अंगुल, यह चोकोन मुहपत्ति का प्रमाण है उसके आचरण करने याने वांधने की विधि–कपड़े की बायी ओर से पाली बनाकर, उसके वाद मोड़के दोपट करे, फिर उससे भी दोपट बाद तिरछी मोड़के आठ गुण (आठ पट) करे ।

इसमें आठ पत वाली मुखवस्त्रिका बनाने की विधि बताई गई है ।

(३) मुखवस्त्रिका हाथमें रखने वाले भी आठ पत वाली ही रखते हैं ।

(४) मूर्तिपूजा के समय मुखकोष बांधा जाता है वह भी आठ पत वाला ही होता है ।

अतएव आठ पतवाली मुखवस्त्रिका मुंहपर बांधना प्रामाणिक है वह बिना डोरे के नहीं बांधी जा सकती है ।

जो लोग कानों के छिद्रोमें पिरोकर बांधते हैं, उसमें खास विटम्बना तो यह है कि—जिस व्यक्तिके कर्ण छेद नहीं किया हो, या छिद्र छोटे हों, तो दीक्षा लेने पर उसे फिरसे कर्ण वेध इसी मुखवस्त्रिका के लिए करना पडता है। तभी वह इस क्रिया का पालन कर सकता है ।

बड़े खेद की बात है कि—ये लोग कर्णवेध "छविच्छेद"

(चर्मछेद) कर्म तो करलेंगे पर पक्षपात के बश होकर जिससे अधिक यत्ना होसके, ऐसी-आठ मत वाली मुखवस्त्रिका डोरे से मुंह पर नहीं बांधेंगे। क्या पक्ष व्यामोह की भी कुछ सीमा है?

ऊपर के विचार से पाठक समझ सकते हैं कि ऐसी शंका करना ही वास्तवमें व्यर्थ है। दूसरी बात शास्त्रकार तो प्रायः सामान्य विधिका ही निर्देश करते हैं। उसके प्रसिद्ध व्यवहारों का निर्देश तो वक्ताओं व श्रोताओं की बुद्धिपर ही आश्रित रहता है। स्थूल दृष्टिसे विचार करने पर भी मालूम हो सकता है कि—कई वस्तुएं ऐसी है जो अपने साथ उपयोग में आने वाली दूसरी वस्तु को चट मांग लेती है। जैसे-रजोहरण की फलियों को दंडीसे बांधने के लिए डोरी की आवश्यकता रहती है और वह आगम प्रमाण के विना भी बांधी जाती है। साध्वी के पहनने का चोलपट्टक (साड़ी) का विधान है किन्तु वह किससे और कैसे बांधना? इसका वर्णन नही होने पर भी उपयोग के अनुसार साधन लिये ही जाते है। पाजामा, व लहेंगा, कमर से बांधने के लिए चट नाड़ा-मांग ही लेता है। यदि कोई इनका प्रमाण मांगे तो वह अज्ञानी समझा जाता है। इसी प्रकार मुखवस्त्रिका के लिए भी समझें।

मुखवस्त्रिका जैन लिंग है।

यद्यपि पूर्वार्द्ध में यह विषय सप्रमाणसिद्ध किया जा

चुका है फिर भी ज्ञानसुन्दरजी के मिथ्या आक्षेप का प्रतिकार करने के लिए कुछ पंक्तियां और भी लिखी जाती हैं,—

यह बात तो स्पष्ट है कि—श्री ज्ञानसुन्दजी ने अपना पूर्व वैर अदा करने के लिये ही ये गालियां दी है. इस आवेग में आपने यह नहीं सोचा कि—इसमें कहीं मेरी अज्ञता या शत्रुता तो प्रकट नहीं होगी ?

जबकि—श्री ज्ञानसुन्दरजी के सहयोगी ही मुखवस्त्रिका मुंह पर बांधना जैनलिंग और नहीं बांधना कुलिग स्वीकार कर रहे है, फिर इससे अधिक और क्या प्रमाण चाहिये ? देखिये वे प्रमाण,—

"मुहपत्ति चर्चा सार" पन्यास रत्न विजयजी गणि रचित पृ. ३९ पंक्ति ५ (मुखवस्त्रिका किस लिए रक्खी जाती है इसके कारणो में तीसरा कारण)

"३ साधुवेश—लिंगमाटे"

इसमें मुखवस्त्रिका को साधु वेष—लिंगमें स्वीकार किया है। आगे देखिये,—

"प्रसंगे मुहपत्ति बधन ए कुलिंग नथी"

पृ ३९ पं ५

"बांधवाना प्रसंगे न बांधवामां आवे, ते कुलिंग"

पृ. ४१ पं १३

क्या ? अब भी ज्ञानसुन्दरजी अपने को स्वलिंगी तथा शुद्ध प्रवृत्ति वालों को कुलिंगी कहने की धृष्टता करेंगे ?

अगर वे तर्क करें कि इसमें तो प्रसंगो-पात ही बांधने को सुलिंग कहा है, सारे दिन बांधने को सुलिंग कैसे कह सकते है ? इसके समाधान में प्रेम पूर्वक निवेदन किया जाता है कि--महाशय ? अभी तो मुहपत्ति चर्चासार के कर्ता इस (मुखवस्त्रिका मुंहपर बांधने के) विषय में निर्णय ही पूर्ण नहीं कर सके। वे स्वयम् पृ. ४० में लिखते हैं कि--"यद्यपि खास बाधवाना प्रसंगोनुं चोक्खुं नक्की तारण कदाच आपणे न काढी शकीए" ये शब्द ही विचार को अवकाश दे रहे हैं ? जिनपर पहले विचार किया जा चुका है, दूसरा वे स्वयम् कर-वस्त्री है, इसलिए अपने मतकी कुछ न कुछ तो बात रखेंगे ही। तीसरा मुंहकी वायु से वायुकायादि जीवों की रक्षा मुखवस्त्रिका बांधे विना नहीं होसकती, इसलिये सदैव बांधना योग्य ही है, यह निस्सदेह समझें।

महाशय ? आपके इन पं. रत्न विजयजी के लेखसे तो आप और आपके साथी उनके बताये हुए सब प्रसंगो पर मुखवास्त्रका नहीं बांधने के कारण अवश्य कुलिंगी ही हैं।

अपने माननीय आचार्य आदिके वाक्य से अबभी आपको परभवका कुछ भय खाना चाहिए, और अपने पकडे हुए मिथ्या हठको तिलांजलि देकर मुखवस्त्रिका मुंहपर बांधनी चाहिये। तथा अपने उपकारी सुसाधुओ की निंदा करते कुछ

शरमाना चाहिये। इसीमें तुम्हारा हित है।*

(१४)

शंका—आपके समाज की ओर से प्रकाशित हुए कई ग्रंथोंमें तीर्थंकर प्रभुके फोटो दिये गये हैं, उन फोटोमें उनके मुंह पर मुखवास्त्रका बताई गई है, तो-क्या, तीर्थंकर प्रभु भी मुंहपत्ति बांधते थे ?

समाधान—महाशय! आपने जो कुछ भी शंका की है, और श्री ज्ञानसुन्दरजी ने भी ऐसी ही कुतर्क बिना आगा पीछा सोचे, द्वेष मिश्रित कर डाली है, उसके लिए आपको सरल बुद्धिसे इस प्रकार समझना चाहिए, कि—

यद्यपि तीर्थंकर प्रभु वस्त्र मात्र नहीं रखते हैं और नग्न ही रहते हैं, तथापि वेही प्रभु अन्य साध्वादि कों को वस्त्रादि रखने का विधान करते हैं, इसमें तो आपके व हमारे मत भेद है ही नहीं। वस्त्रके नहीं होने पर भी प्रभु अतिशय के प्रभावसे सर्व साधारण को वस्त्र युक्त ही दीखते थे, यह भी दोनों मानते है। फिर जब प्रभु साधु वेष युक्त दिखाई देते है, तो साधु वेषमें तो मुखवस्त्रिका है ही! फिर आपकी यह तर्क कहां

* मुंहपत्ति चर्चासार पृ ४० में मुखवस्त्रिका बांधने के प्रसंग बताये हैं, उसमें अन्तिम कारण में मृतकने 'विगेरे' इस प्रकार आदि शब्द आया है, यह भी अन्य प्रसंगों को स्थान देता है।

ठहर सकती है ? और इस तर्कसे तो आपका कर-वस्त्र भी उड़ जाता है ? क्या इसका भी कुछ मान है ?

जो लोग तीर्थंकर प्रभुको नग्न मान कर भी उनकी मूर्तिके लंगोट कसते हैं। * और वितराग अवस्था की (कायोत्सर्ग-युक्त) कह जानेवाली मूर्तिको मुकुट कुंडलादि लगाकर राजा जैसी बना देते हैं। क्या, वे लोग इस प्रकार के प्रश्न करनेके अधिकारी हैं ?

यहां पाठको को यह ध्यान में रखना चाहिये कि- तीर्थंकर प्रभु जो भी मुखवस्त्रिका आदिको नहीं + रखते थे, तथापि वे निर्वद्य भाषा ही बोलते थे, प्रभुने कभी सावद्य भाषा बोली ही नहीं, ऐसा खास अंगसूत्र से पाया जाता है और अपने अतिशय प्रभाव के कारण सर्व साधारण की दृष्टिमे वे साधु वेष युक्त दृष्टिगत होते थे। इसलिए अगर उन प्रभुका चित्र मुखवस्त्रिका युक्त दिया गया तो क्या, अनुचित है ?

हम ऐसे कई चित्र मूर्ति पूजकों की ओर के बता सकते हैं, जिनमें—उन्होंने प्रभुको वस्त्रयुक्त चित्रण किया है। खास

---

* तीर्थंकर प्रभुको नग्न मानकर उनकी मूर्ति के कोट जाकेट पातलुन कालर आदि पहनाकर उन्हें विदेशी जसे बनाने वाले और इस प्रकार मनमानी मौज मानने में प्रभुभक्ति वतलाने वाले श्री ज्ञान सुन्दरजी को अनुचित रीति से की गई अपनी अनधिकार दस्तंदाजी के लिए लज्जित होना चाहिए।

+ सिर्फ इन्द्रकी खन्धेपर रक्खी हुई कम्बल ही रहती है।

कर उसमें चंन्दनबालाजी के दान देने के समय का चित्र तो प्रत्यक्ष इस बातको स्पष्ट कर रहा है। ऐसे एक नहीं अनेकों चित्र है। + फिर ज्ञानसुन्दरजी को यह कुतर्क करने की बुद्धि क्यों सुझी ? केवल वैर चुकाने के लिये ही ?

(१९)

शङ्का—मुंह पर बांधने के कारण मुखवस्त्रिका थूंक से गीली हो जाती है, जिससे उसमें सम्मूर्छिम जीव उत्पन्न हो जाते हैं और उनकी हिंसा भी होती है। ऐसी हालत में यह क्रिया किस प्रकार उचित कही जा सकती है ?

समाधान—मुँहपत्ति में थूंकसे सम्मूर्छिम जीवों की उत्पत्ति बताना भी शास्त्र ज्ञान की अपूर्णता सिद्ध करता है। सूत्रोमें कहीं भी थूंकसे सम्मूर्छिम जीवों की उत्पत्ति होना नहीं कहा है। देखिये,—

+ज्ञानसुन्दरजी ? अपना धन्य भाग्य समझो कि तुम्हारी यह कुतर्क किसी दिगम्बर के देखने में नहीं आई, अन्यथा ऐसे कल्पित चित्रों के लिए जब वे आपसे जवाब तलब करेंगे, तब तो आपको बगलें ही झांकनी पडेगी। क्योंकि—आपने नग्न प्रभुको वस्त्र पहिनाये हैं। यदि वास्तवमें देखा जाय तो-इन ज्ञानसुन्दरजी जैसे फक्कडों ने ही जैन समाज को बरबाद किया है, यदि ये मूर्ति पर व्यर्थ के मन कल्पित आडम्बर नहीं मढते तो दि श्वे के ये झगडे भी उपस्थित नहीं होते और क्रोडों रुपये का चूर्ण नहीं होता। यह बस करामात इन ढों ..कुलगुरुओं की ही है।

पन्नवणा सूत्रमें सम्मूर्छिम जीवों की उत्पत्ति के चौदह स्थान बताये हैं, जैसे—

उच्चारेसुवा १ पासवणेसुवा २ खेलेसुवा ३ संघाणेसुवा ४ वंतेसुवा ५ पित्तेसुवा ६ पूइएसुवा ७ सोणिएसुवा ८ सुक्केसुवा ९ सुक्कपोग्गल परिसाडिएसुवा १० विगय जीवकलेवरे सुवा ११ इत्थी पुरिस संजोएसुवा १२ नगर निद्धमणेसुवा १३ सव्वेसुचेव असुइ ठाणेसुवा, १४

अर्थ-(१) विष्ठामें (२) पेशावमें (३) खेंकार (वलगम) में (४) नाकके श्लेष्म (मल) में (५) वमनमें (६) पित्तमें (७) पीपमें (८) रक्तमें (९) वीर्यमें (१०) वीर्यके सुखे हुए पुद्गलों के गीले होने पर (११) शवमें (१२) मैथुनमें (१३) शहर की मोरीमें (१४) सब अशुचिके स्थानमें,—

इन चौदह स्थानोंमें थूंकसे जीवोत्पत्ति होने का तो कोई स्थान ही नहीं है। फिर यह नूतन सिद्धान्त हाथमें वस्त्र रखने वालोंने न जाने किस शास्त्रमें से गढ निकाला है ?

महानुभाव ? अगर कुछ देर के लिए "तुष्यतु दुर्जनः" इस न्याय के अनुसार आपकी यह दलील मान भी ली जाय, तो—यहतो आपही पर लागु होती है, क्योंकि—आपकी समाज के वहुतसे (खरतर गच्छादि के) मुनि व्याख्यान के समय में नाक और मुंह पर वस्त्र बांधते है। और घंटों तक जोर

जोरसे बोलते हैं, इससे उनकी वह मुखवस्त्रिका अधिक गीली होही जाती है ? क्योंकि-वे तो मुंहसे चिपकाकर बांधते हैं, और आपके इस नूतन सिद्धांत के अनुसार उसमें जीवोत्पत्ति भी होती होगी ? इससे तो वे साधु असंख्य सम्मूर्छिम जीवों के घातक होते ही होंगे ? क्योंकि-यह तो आप लोगों का ही अभिमत सिद्धांत है।

हम तो मानते हैं कि वास्तवमें सिद्धांत के अनुसार मुंह पर लगी हुई मुंहपत्ति में थूंकसे सम्मूर्छिम जीवों की उत्पत्ति होती ही नहीं है यह तो केवल हमारे इन बन्धुओ को यह निष्फल चेष्टा ही है।

(१६)

शंका—श्रीमान ज्ञानसुंदरजी ने अपनी पुस्तक में एक जगह लिखा है कि-जब स्थानक वासियों से पूछा जाता है, कि-तुम मुखवस्त्रिका क्यों बांधते हो तब वे कहते हैं कि-हमसे उपयोग नहीं रहता इसलिये। तो-क्या यह बात सत्य है ?

समाधान—श्री ज्ञानसुंदरजी की बातों में सच्चाई का तो कहना ही क्या है ? इन्हें तो किसी तरह अपना अभीष्ट साधना है, चाहें वह उचित हो, या अनुचित ?

जबकि-मुखवस्त्रिका मुंह पर बांधने के विषय में साधु-मार्गीयों के पास काफी प्रमाण है, तब वे केवल ऐसी लचर दलील ही उत्तर में देवे, यह कैसे हो सकता है ? और जो उपयोग वंत होने का दम भरते हैं उनकी हालत तो जरा

तपासो, जिससे मालूम हो जाय कि—ये कितने अंशो में सत्य हैं।

पाठको ? आप इतना तो निश्चय समझें कि—हाथमें वस्त्र रखने वाले, मुंह पर बांधने वालोंके समान यतना नहीं रखते, और वे अधिकांश खुले मुंह ही बोलते हैं। इस लेखकने स्वयम् इनके बडे २ आचार्यों को देखा है कि जो हाथमें वस्त्र होते हुए भी खुले मुंह बातों के सपाटे मारते थे। और कितने ही ऐसे महाशय (साधु) भी देखे गये है कि—जो जहां बैठे २ या, खडे २ बाते कर रहे थे, उनके हाथमें मुखवस्त्रिका ही नहीं थी, और उनसे कुछ दूर रक्खी हुई थी। हमारे प्रेमी पाठक एवम् निष्पक्ष मूर्ति पूजक बन्धु भी इन बातोंको भली प्रकार जानते होंगे।

अब हम विशेष नहीं लिखकर केवल एक बने हुए प्रसंग का प्रमाण देकर इस विषय को पूर्ण करते हैं।

"मुम्बई समाचार" दैनिक ता. ८ अगस्त मंगलवार सन् १९३४ के पृष्ट १५ में "जइन समाज सावधान" शीर्षक लेखसे श्री विजयनीतिसूरिजीके प्रशिष्य पं. कल्याणविजयजी लिखते हैं,—

"नहीं बांधनार ने केटलुं नुकसान थायछे तेनो ताजो बनेलो दाखलो जनतानी आगल मूकुछुं, "अमदावाद शहेरमां अमुक उपाश्रय मां स्थीरता करता अमुक आचार्य महाराज व्याख्यान नी पीठपर बेसी व्याख्यान खूब जोर दार करी रहया हता, जुस्सा मां चालता व्याख्यान मां—

"मक्षीकाए मुखमां प्रवेश कर्यो" प्रवेश करतां व्याख्यान नो ध्वनि अटके छे, अने वमन नो ध्वनि झलके छे. भाइओ? विचार करजो, वीतरागना वचनामृत नुं पान करता श्रोताओ शुं? सांभळे छे? वमन के? आ प्रताप कोनो? व्याख्यान मां मुहपत्ति नहीं बांधनाराओनो? बांधनाराओ ना मुखमां मक्षिका प्रवेश करी शके के? एवा अनेक कारणे शास्त्रकार महाराजे मुंहपत्ति बांधी व्याख्यानादिक करवा भलामण करेल छे."।

इस विषयमें और भी सत्य घटनाएं दी जा सकती है, पर पाठक स्वयम् अनुभव शील होंगे, अतः निवन्ध का कलेवर व्यर्थ नहीं बढ़ाकर उपरोक्त घटना ही पर दो शब्द लिख कर विषय पूर्ण करता हूँ।—

हाथमें रहने वाली जिस मुखवस्त्रिका से ऐसे अनर्थ हो, व मक्खी जैसे प्राणी की भी जो रक्षा नहीं कर सकती, वह वायुकाय जैसी सूक्ष्म काय जीवों की किस प्रकार रक्षा कर सकता है?

और प्रसंग भी कैसा? व्याख्यान का। जहां सैकडों मनुष्यों की मौजूदगी होगी वहां भी ये लोग इस प्रकार उपयोग का आदर्श सिद्ध करते हैं, तव वादमें, या, अकेले मे या विरल जनों मे तो कहना ही क्या? उस समय इस करवस्त्र का क्या उपयोग होता होगा? और कितनी अयतना होती होगी? यह तो ज्ञानी जाने। यह इससे साफ जाहिर होता है

कि–जो उपयोग का व्यर्थ वहाना कर मुखवस्त्रिका नहीं बांधते हैं। वे, जिन वचनों की उपेक्षा (बेदरकारी) एवम् जीवों की विराधना करने वाले है।

असलियत में इस हाथमें रहने वाले वस्त्रको तो मुंहपत्ति नहीं कह कर "मुंह पोंछना" कहा जाय तो उपयुक्त होगा, क्योंकि–ये लोग पानी पी लेने पर या पसीना हो जाने पर इसीसे मुंह पोंछते देखे गये हैं। मुखवस्त्रिका तो केवल नाम मात्र की–कहने के लिए हो है। वास्तवमें तो उसका दुरुपयोग ही होता है।

(१७)

शंका—श्री ज्ञानसुन्दरजी ने तो इतिहास से भी मुखवस्त्रिका को हाथमें रखना सिद्ध किया है, क्या, आप भी ऐसा प्रमाण दे सकते हैं ?

समाधान—भाई ? आप यह तो जानते ही होंगे कि–जैन शासन में जो सिथिलता घूसी है वह आज कल की नहीं है वल्कि हजारों वर्षकी है, और सप्रमाण सिद्ध भी है। (जिसके लिए एक स्वतन्त्र निवन्ध लिखने का विचार है)। फिर उसमें जो कुछ हो वह थोड़ा ही है। फिर भी हम यह कह सकते है कि– चाहे थोड़ी संख्या में ही हो किन्तु सुविहितों की सत्ता भी अवश्य थी और मुखवस्त्रिका के मुंह पर वांधने की प्रवृत्ति भी थी, पर ज्यों ज्यों सिथिलाचार वढ़ता गया

ज्यों ज्यों इसमें छूट होती गई, व अन्तमें मुंह से उतर ही पड़ी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि-इन लोगोंके ग्रन्थ तो कितने ही प्रसंगों पर बांधना बताते है, और ये कितने प्रसंगों पर बांधते है। मतलब यह कि-जब सिथिलाचारका प्रवेश हुवा तब इस मुखवस्त्रिकाका पूर्वोक्त ७-८ प्रसंगोंमें बांधने का ही मान्यकर बाकीके समय नहीं बांधने का निर्णय किया गया, और जब सिथिलाचार अधिक बढ़ा तो केवल व्याख्यान के प्रसंग पर ही बांधना मानकर अन्य समय के लिए उपेक्षा की गई, और अब तो अधिकांश बांधने में ही मिथ्यात्त्व एवम् पाप मानने लगे है। यह सब सिथिलाचार का प्रभाव है। अगर समयने पल्टा खाया, तो-सम्भव है, फिर मुखवस्त्रिका को अपना पूर्व स्थान इन लोगों से प्राप्त होजाय।

हमें इतिहासों का प्रमाण खोजने की आवश्यकता ही क्या है ? इन्हींके ग्रन्थ बता रहे हैं कि- भुवन भानु केवली हरिबल मच्छी, हीर विजय सूरि आदि के समय मुखवस्त्रिका बांधी जाती थी, और मुहपत्ति चर्चासार के चित्र भी बता रहे है कि-श्रीपाल राजा के समय भी मुखवस्त्रिका मुंहपर बांधी जाती थी। फिर हमें व्यर्थ के कष्ट उठाने की क्या जरूरत है?

(१८)

ज्ञानसुन्दरजी अर्धमागधी कोषको देखकर तो भड़क ही उठे हैं, और अपनी विकृत वाणी के कुछ छींटे जैन समाज के प्रसिद्ध विद्वान, भारत रत्न शतावधानी पंडित मुनिराज श्री

रत्नचन्द्रजी महाराज पर भी डाले हैं। पर सुन्दरजी को उत्तरासंग का वह चित्र देखकर भड़कने की आवश्यकता नहीं है। इससे तो इनकी योग्यता और हठाग्रहता का ठीक ठीक पता चल जाता है। अगर सुन्दर महाशय शांत भावसे विचार करते तो-इन्हें ऐसी कुतर्क करने की बुद्धि नहीं होती।

अब हम इन्हें सुझाते है कि-आप जरा सत् गुरुओं की शरण लेकर सिद्धांतो की सद्बुद्धि से स्वाध्याय करें और फिर तर्क उठाने की हिम्मत कीजिये। देखिये, निम्न प्रमाण क्या बताते हैं,—

(१) भगवती सूत्रानुसार मुंहपर वस्त्र रखकर बोली हुई भाषा ही निरवद्य भाषा हो सकती है। और भगवती उपाशक दशांग, औपपातिक आदि सूत्रो में राजाओं, श्रावकों आदि के प्रभु वन्दन करने को जाने का वर्णन आया है, वहां वे उत्तरासंग करके गये थे ऐसा कथन भी है। उन्होंने धर्मोपदेश भी श्रवण किया, और प्रश्नोत्तर भी हुए थे, तो क्या-वे ऐसे प्रसंगमें खुले मुँह से बोले थे? नहीं। उन्होंने मुंहपर वस्त्र रखकर ही शब्दोच्चार किया था। क्योंकि-खुले मुंह बोलना तो सावद्य भाषा है, जो भगवती सूत्रके प्रमाणसे सिद्ध होकर आपको भी मान्य है। इसलिये सिद्ध हुवा कि वे श्रावकादि, वस्त्रसे मुँह की यतना करके निरवद्य भाषा ही बोले थे।

अब यहां प्रश्न यह उपस्थित हो सकता है कि-क्या वह वस्त्र मुखवस्त्रिका थी, या उत्तरासंग, तो इसका सहज ही उत्तर है कि-मुखवस्त्रिका नहीं, वहां उत्तरासंग ही उपयुक्त होता है, क्योंकि—वहां सामायिकादि विशेष धार्मिक करणी करने का कथन नहीं है, इसलिए उत्तरासंग से ही मुंह की यतना करना सिद्ध होता है।

श्री ज्ञानसुन्दरजी उत्तरासंग को केवल शोभा के लिए ही रखना बताते हैं, पर यह बात भी इनकी एकांत होने से ठीक नहीं है, क्योंकि-वहां शोभा का कोई खास कारण नहीं था, हां, शोभा तो उन लोगोंने घरसे प्रस्थान करते समय अवश्य की थी, पर जहां समवसरण दृष्टिगत हुवा कि-फौरन पुष्प मालाएं उतार कर अलग डाल दी, जूते खोल डाले, छत्र उतार दिये, मुँहका पान थूक दिया, और वस्त्रसे उत्तरासंग कर दोनो हाथें को जोड़कर समवसरण में प्रविष्ट हुए। अतएव शोभा करने का कहना अनुचित सिद्ध हुआ।

दूसरा उत्तरासंग से शोभा का वहां कोई संवन्ध नहीं है। क्यों कि जहां समवसरण दृष्टिगोचर हुवा कि त्वरित शोभावर्द्धक वस्तुए दूर की। और फिर उत्तरासंग धारण किया, यदि उत्तरासंग से शोभा बढ़ाना ही अभीष्ट होता तो उन्हें घरसे रवाना होते अन्य शोभा वर्द्धक वस्तुओं के साथ साथ उत्तरासंग भी करना चाहिये था? पर ऐसा कथन तो है ही नहीं।

अतएव सिद्ध हुवा कि उत्तरासंग का मुँहकी यत्ना में उप-योग करना प्रमाणित और शास्त्र सम्मत है।

(२) हमारे सुन्दरजी की समाज के कपूर विजयजी के शिष्य पुण्य विजयजी तत् शिष्य प्रधान विजयजी लिखित और दानमल शंकर दान नाहटा बीकानेर द्वारा प्रकाशित "जिनराज भक्ति आदर्श" में लिखा है कि—

"देरासर के अन्दर प्रवेश करने के समय से लेकर निक-लने की वख्त तक उघाड़े मुँहसे बोलना ही निषिद्ध है। अष्ट पुट मुखकोश और "उत्तरासन" का किनारा इसी ही के लिए है, किन्तु इस तरफ बिल कुल ध्यान नहीं दिया जाता है।"

ये दो प्रमाण ज्ञानसुंदरजी के नेत्र खोलने में पर्याप्त होंगे, खोज करने पर और भी अनेक प्रमाण इस विषय को पुष्ट करने वाले मिल सकते हैं, परन्तु इतने प्रयत्न से ही हम ज्ञान सुन्दर-जी से यह अवश्य कहेंगे कि—महात्मन्? व्यर्थ की कुतर्क करना छोडिये, और सरल बुद्धिसे विचारिये, आपको यह विश्वाश होगा कि—उत्तरासंग रखने का मुख्य मतलब धार्मिक प्रवृत्ति में निरवद्य भाषा बोलने के उपयोग में आनेका है। केवल शोभा ही नहीं। और इस प्रकार भारत रत्न, समाज के चमकते हुए सितारे श्रीमान शतावधानाजी का कथन सत्य है।

लेकिन हमें तो यह जँचता है कि—सुंदरजी की कुतर्क केवल द्वेष बुद्धि युक्त ही है। जिज्ञासा की झलक तो उसमें है ही नहीं।

(१९)

शंका—वायु कायके जीव आठ फरसी हैं, और भाषा के पुद्‌गल चौ फरसी हैं, अतएव भाषाके स्वल्प शक्ति वाले पुद्गल द्विगुण शक्ति वाले वायुकाय के जीवों की हिंसा किस प्रकार कर सकते है?

समाधान—यह भी शंका अनभिज्ञता एवम् हठाग्रह को सूचित करती है, ऐसी ही कुतर्क ज्ञानसुन्दरजी ने भी की है। ज्ञानसुन्दरजी यह भूले हुए हैं कि-एकेन्द्रिय तेजस्‌काय के जीव किस प्रकार पंचेन्द्रिय को भस्म कर देते हैं? अब हम ज्ञानसुन्दरजी का योग्य इलाज करने के लिए उन्हे कहते हैं कि-आप अन्य कहीं नहीं भटक कर आपही के समाज के आगमोद्धारक, श्री सागरानंदसूरिजी (जो कि-मुखवस्त्रिका के कट्टर विरोधी हैं) के निम्न वाक्य जो प्रतिकार समिति की मासिक पत्रिका जैन सत्य-प्रकाश वर्ष १ अङ्क ७ में मुद्रित हो चुके है, जरा ध्यान पूर्वक पढ़िये, आपका अज्ञानान्धकार नाश हो जायगा,—

एम नहिं कहेवुं के भाषावर्गणा ना पुद्गलों चउ फरसी होवाथी आठ स्पर्श वाला वाउकाय विगेरे नी विराधना केम करी शके? केमके शब्द वर्गणा ना पुद्‌गलों जे भाषापणे परिणमे छे ते जेओ के चउस्पर्शी छे, तोपण तेवी रीते परिणमवुं नाभी थी उठीने, कोष्ठमां हणाई ने वर्ण स्थानों मां

फरसी ने निकलता पवन द्वाराएज बने छे, अने ए वात बोलती वखत मोढा आगल राखेला हाथ के वस्त्रना स्पर्श के चलनादि थी अनुभव सिद्धछे,"तो तेवी रीते भाषानी वखते निकळेलो वायु बाहर रहेला सचित वाउकायनी विराधना करे तेमां शंकाने स्थान होई शके नहीं," ए वात पण शास्त्र सिद्ध छे के शरीर मां रहेलो वायु बाहर ना वायु ने शस्त्र रूप छे ××× आदि

इसके सिवाय और भी प्रमाण जो पूर्वार्द्ध में दिये गये है, वे आपकी व ज्ञानसुन्दरजी की शंका का मूलोच्छेद करने में पर्याप्त हैं।

(२०)

श्री ज्ञानसुन्दरजी ने मुखवस्त्रिका हाथमें रखने का लाभ बताते हुए, उसकी प्रतिलेखना के समय विशुद्ध भावना होने की जो डींग मारी है, उससे हाथ में रखने या मुँहपर बांधने का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। क्योंकि-प्रतिलेखना तो मुँहपर बांधते हुए भी करनी पड़ती है, अतएव बांधने का कोई सवाल इसमें उत्पन्न नहीं हो सकता। तथापि इनका यह लाभ-निर्देश कथन केवल वाणी विलास ही है। और इनकी इस प्रति लेखन क्रिया में ऐसी भावनाएं मुखवस्त्रिका द्वारा हो, यह कथन वास्तव में हास्यास्पद एवं प्रमाण रहित है।

क्या मुखवस्त्रिका अपने आप इनके हृदय में ऐसी भाव-

नाएं उत्पन्न कर देती है? या इन लोगों के कान में कह देती है? कदापि नहीं। इससे तो बेहतर यह है कि-एक ऐसा नियम ही बना दिया जाय, कि-जिससे दिनमें इतनी बार या अमुक २ समय पर इन भावनाओं का स्मरण अनिवार्य होता रहे। यदि प्रतिलेखना का यही उद्देश्य है तो-सुन्दरजी को रजोहरण वस्त्र पात्र दंड आदि के प्रतिलेखन समय की भावनाएं भा जाहिर कर देनी चाहिये।

वास्तवमें यह भावनाओं का खाली बहाना मात्र ही है। क्या, ज्ञानसुन्दरजी? यह बताने का कष्ट स्वीकारेंगे कि-बिना मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना के ऐसी भावनाएं हो ही नहीं सकती?

महाशय? साधु पुरुषों के तो स्वभाव से ही ऐसी भावनाएं होती है। और विशेष कर ध्यान प्रतिक्रमणादि प्रसंग पर प्रकारांतर से ऐसी भावनाएं कही व विचारी भी जाती है। फिर खाली मुंहपत्ति मुंहपर नहीं बांधने के लिए ही भावनाओ का बहाना लेना, मिथ्या नहीं तो क्या है?

सुंदरजी कहते हैं कि- मूर्तिपूजक प्रत्येक कार्य में मुंहपत्ति प्रतिलेखन द्वारा अशुभ भावनाओं को हठाकर शुभ भावना द्वारा आत्म विशुद्धि करके ही क्रिया क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं। सुंदरजी अपने इन शब्दों से भोळे लोगों को भले ही भ्रम में डालदें, पर जो लोग समझदार हैं, और जो इनसे अधिक परिचय

फरसी ने निकलता पवन द्वाराएज बने छे, अने ए वात बोलती वखत मोढा आगल राखेला हाथ के वस्त्रना स्पर्श के चलनादि थी अनुभव सिद्धछे,"तो तेवी रीते भाषानी वखते निकळेलो वायु बाहर रहेला सचित्त वाउकायनी विराधना करे तेमां शंकाने स्थान होई शके नहीं," ए वात पण शास्त्र सिद्ध छे के शरीर मां रहेलो वायु बाहर ना वायु ने शस्त्र रूप छे XXX आदि

इसके सिवाय और भी प्रमाण जो पूर्वार्द्ध में दिये गये है, वे आपकी व ज्ञानसुन्दरजी की शंका का मूलोच्छेद करने में पर्याप्त हैं।

(२०)

श्री ज्ञानसुन्दरजी ने मुखवस्त्रिका हाथमें रखने का लाभ बताते हुए, उसकी प्रतिलेखना के समय विशुद्ध भावना होने की जो डींग मारी है, उससे हाथ में रखने या मुँहपर बांधने का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। क्योंकि—प्रतिलेखना तो मुँहपर बांधते हुए भी करनी पड़ती है, अतएव बांधने का कोई सवाल इसमें उत्पन्न नहीं हो सकता। तथापि इनका यह लाभ—निर्देश कथन केवल वाणी विलास ही है। और इनकी इस प्रति लेखन क्रिया में ऐसी भावनाएं मुखवस्त्रिका द्वारा हो, यह कथन वास्तव में हास्यास्पद एवं प्रमाण रहित है।

क्या मुखवस्त्रिका अपने आप इनके हृदय में ऐसी भाव-

नाएं उत्पन्न कर देती है? या इन लोगों के कान में कह देती है? कदापि नहीं। इससे तो बेहतर यह है कि-एक ऐसा नियम ही बना दिया जाय, कि-जिससे दिनमें इतनी बार या अमुक २ समय पर इन भावनाओं का स्मरण अनिवार्य होता रहे। यदि प्रतिलेखना का यही उद्देश्य है तो-सुन्दरजी को रजोहरण वस्त्र पात्र दंड आदि के प्रतिलेखन समय की भावनाएं भी जाहिर कर देनी चाहिये।

वास्तवमें यह भावनाओं का खाली बहाना मात्र ही है। क्या, ज्ञानसुन्दरजी? यह बताने का कष्ट स्वीकारेंगे कि-बिना मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना के ऐसी भावनाएं हो ही नहीं सकती?

महाशय? साधु पुरुषों के तो स्वभाव से ही ऐसी भावनाएं होती है। और विशेष कर ध्यान प्रतिक्रमणादि प्रसंग पर प्रकारांतर से ऐसी भावनाएं कही व विचारी भी जाती है। फिर खाली मुंहपत्ति मुंहपर नहीं बांधने के लिए ही भावनाओ का बहाना लेना, मिथ्या नहीं तो क्या है?

सुंदरजी कहते हैं कि- मूर्तिपूजक प्रत्येक कार्य में मुंहपत्ति प्रतिलेखन द्वारा अशुभ भावनाओं को हठाकर शुभ भावना द्वारा आत्म विशुद्धि करके ही क्रिया क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं। सुंदरजी अपने इन शब्दों से भोले लोगों को भले ही भ्रम में डालदें, पर जो लोग समझदार हैं, और जो इनसे अधिक परिचय

रखते हैं, वे अच्छी तरह से जानते हैं कि—इनकी यह प्रति लेखना किस प्रकार होती है ? चट मुँहपत्ति को फैलाकर इधर उधर हाथों पर फिरा, कुछ सेकण्डों में ही इस कार्य की पूर्णाहुति करदी जाती है। ऐसी हालत में इनकी भावनाओं का तो कहना ही क्या ? यहां तो खाली हाथी के दांत बताने के ही है।

और ऐसी नित्य क्रिया द्वारा अशुद्ध भावनाओं को हटाकर शुद्ध भावना करने वाले सुंदरजी महाराज का शब्द-माधुर्य तो देखिये, जो कमर कस कर साधु मार्गी समाज की निंदा करने में ही डटे हुए हैं, और कुलिंगी, निन्हव, उत्सूत्र भाषी, शासन भंजक, नास्तिक आदि तुच्छ शब्दों की वर्षा कर रहे हैं। क्या, शुभ भावनाओं का यही ज्वलंत प्रमाण है ? क्या मुखवस्त्रिका को मुंह से उतार कर हाथमें लेने पर सुंदरजी ने उससे ऐसी ही भावनाएं प्राप्त की है ?

सुंदर महाशय ! जिस क्रियाकी भावना—विशुद्धि भी बुद्धि को शुद्ध कर देती है, उस क्रिया को यत्न से करने वालों को गालियां देना ही तो आपकी भावना—विशुद्धि प्रमाणित हो रही है।

श्रीज्ञानसुँदरजी को यह मालूम नहीं है कि—जिस समाज में बडे २ और उच्च चारित्रवान् महात्मा होगये हैं और वर्तमान में भी मौजूद हैं, जिनके उच्च चारित्र एवम् त्याग

वैराग्य की प्रशंसा मूर्तिपूजक समाज के विद्वान भी कर रहे हैं, और जिनके लिये आदर सूचक शब्दों का प्रयोग करते हैं, उन सच्चे वीर पुत्रों की निंदा करना, शासन शत्रुता है। ऐसे कृत्यों का फल इन्हे अवश्य भोगना पडेगा।

सुंदरजी महाराज ! अधिक क्या बताऊं, आपकी योग्यता और मरुधर केशरी पनतो, "जैन जाति निर्णय समीक्षा" जो "मुनि श्री मग्नसागरजी" लिखित एवम् खरतरगच्छीय जैन संघ द्वारा प्रकाशित है, उससे बखुवी जाहिर होती है। अब कृपाकर आप अपनी भाषा पर काबु कीजिये, अन्यथा इसी जैन जाति-निर्णय समीक्षा के आधार पर एक "गयवर पुराण" लिखकर आपकी सेवामें समर्पित करना पडेगा।

(२१)

ज्ञान सुंदरजी महाराज ने अपनी कृति के पोथेमें (जो अभी प्रकाशित हुवा है) स्थानक वासी समाज के साधुओं और लोंकागच्छ के यतियों व तेरह पंथीयों के कल्पित फोटो देकर जो कुविकल्प किया है, वह वास्तवमें इनकी हृदय कलुषितता का नग्न ताण्डव है। क्योंकि—जिन शब्दों का इन्होंने प्रयोग किया है, वे हैं तो केवल कल्पित और द्वेष पूर्ण ही।

इन्हें मालूम नहीं है कि—गत अजमेर साधुसम्मेलन में देशी परदेशी ही नहीं, पर साधुमार्गी जैन संसार के लग-

साध्वीजी ने दोनों हाथों की अंगुलियें दोनों कानों में डाल कर (कान बंदकर) जो शब्द कहे हैं, उस समय उनके मुँह पर मुखवस्त्रिका अवश्य बंधी हुई थी, क्योंकि हाथ तो दोनों उनके कानके लगे हुए थे, और खुले मुँह बोलना तो मू० पू० लोग भी स्वीकार नहीं करते, फिर बिना बांधे ऐसा हो ही कैसे सकता है।

फिर देखिये,—निरयावलिका सूत्रमें सोमिल तापस का अधिकार है, वह जैन धर्म से निकल कर तापस हुवा था, उसने भी काष्टकी मुखवस्त्रिका मुँह पर बांधी थी, उससे भी यही सिद्ध होता है कि–उस समय मुखवस्त्रिका मुंह पर ही बांधी जाती थी यद्यपि सोमिल जैनधर्म छोड़ चुका था, और इसीसे उसने जैन मान्यता के विरुद्ध–वस्त्र की जगह काष्टको मुंह पर बांधा। पर बांधना तो सिद्ध है ही, यदि उस समय बांधने की पद्धति नहीं होती, तो–वह क्यो बांधता।

और आचारांगादि आगमों में जहां २ मुखवस्त्रिका शब्द आया है, वहां वहां मुंहपर बांधने का वस्त्र विशेष ही अर्थ होता है, जिसे हम प्रथम सिद्ध कर आये हैं। फिर अब शंका की बात ही नहीं रह सकती।

(२३)

उपसंहार

पूर्वोक्त प्रकरणों में मुखवस्त्रिका के उद्देश्य तथा बांधने

और नहीं बांधने से होनेवाले हानि लाभ स्पष्ट बतादिया गया है, जिनका संक्षिप्त सार इस प्रकार है।

(१) मुख वस्त्रिका, वायुकायादि जीवों के रक्षार्थ एवम् जैन साधुओंकी पहिचानके लिए ही मुँह पर धारण की जाती है।

(२) मुँह की वायु से बाहरके वायुकायिक जीवोंकी हिंसा होती है।

(३) मुखवस्त्रिका मुँहपर बांधने से ही दोनो उद्देश्य बराबर सध सकते हैं। नहीं बांधने से जैन लिंग और जीवरक्षाका पूर्णपालन नहीं हो सकता।

(४) शास्त्रोंके नामसे मुखवस्त्रिका हाथमें रखना, प्रमाण शून्य और प्रत्यक्ष झूठ है।

(५)मुखवस्त्रिका बांधने में थूकसे असंख्य समूर्च्छिम मनुष्योंकी उत्पत्ति बताना भी शास्त्रीय अनभिज्ञता एवम् मूर्खता है। और साथ ही उत्सूत्र प्ररूपणा भी।

(६) मुखवस्त्रिका केवल मुँहपर बांधनेके लिये है। नके शरीर प्रमार्जन के लिये।

(७) खुले मुँहसे बोली हुई भाषा सावद्य भाषा है, और मुखवस्त्रिका मुँहपर नहीं बांधकर हाथ में रखनेवाले अधिकांश खुले मुँह बोलते हैं। और मुखवस्त्रिका का दुरुपयोग करते हैं।

(८) ऐतिहासिक प्रमाणोंसे भी मुखवस्त्रिका कों मुँहपर बांधना ही सिद्ध होता है।

(९) जीवरक्षा, और जैनसाधु के लिंगके लिए (आवश्यक कार्योंके सिवाय) सदैव मुखवस्त्रिका मुँहपर बांधना आवश्यक है।

(१०) मुखवस्त्रिका मुँहपर बांधने के विरूद्ध की गई शंकाएं केवल कुतर्क ही है। सत्त्यांश का तो नाम मात्र भी नहीं है।

इस प्रकार हम अपने इस छोटे से निवन्ध में मुखवस्त्रिका का मुँहपर बांधना अनेक प्रबल एवम् अकाट्य प्रमाणों द्वारा-सिद्ध कर उसके विरोधमें उठाई हुई शंकाओंको निर्मूल कर चुके है।

यदि हमारे प्रेमी पाठक इस छोटेसे निवन्ध को कमसे कम एक वार ध्यान पूर्वक शांत चित्तसे अवलोकन करेंगे, तो-उन्हें यह अवश्य विश्वास होगा, कि हमारे मूर्तिपूजक भाई, और हमारी समाजसे तिरस्कार पाये हुए ज्ञानसुंदरजी, जो हम पर आक्षेप एवम् आक्रमण कर रहे हैं, वे केवल द्वेष पोषण के लिए और साथमें सिथिलाचारको शास्त्र सम्मत सिद्ध करने के लिये ही। यातो इन्हें अपने सामाजिक ग्रंथों का ज्ञान नहीं, या ये जान वूझकर अभिनिवेशकी प्रबलतासे अपने हठको छोड़ते नहीं है।

परंतु, हा ? मिथ्याभिमान ? तुझे कुछभी विचार नहीं होता। अरे, तुझे कमसे कम इतना तो ध्यान रखना चाहिये, कि–मैं, कमसे कम पतीत पावन जैनधर्म परसे तो अपनी माया हठालूँ। और साधु एवम् पंच महाव्रत धारी वीर पुत्र एवम् मरुधर केशरी कहे जानेवाले व्यक्तियो को तो अपनी जालसे मुक्त करूं।

देख ? तेरे ही कारण आज जैन साधु नाम धारी लोग सिद्धान्त सम्मत विधानको जान लेने पर भी झूठा कह रहे है।

देव ? यदि मेरी सलाह माने, तो मैं तुझे यही कहूँगा कि–अब बंदकर बहुत हो चुका, जैनसमाज परसे तूं अपना पंजा हठाले, तेरे लिए और भी बहुतसा स्थान है। सारा संसार पड़ा है ।

यदि अबभी तू नहीं समझेगा तो भविष्यमें न जाने क्या होगा ? सुंदरजी जैसे सुंदर हृदयी (?) लोंगोंके कारण समाज शांति भयभीत है।

प्रिय पाठक वृंद ? यदि आपको मेरे इतने लेख परसे कुछ पूछना हो, या मेरे दिये प्रमाणों में संदेह हो तो–कृपाकर मुझे लिखनेका कष्ट करें। मैं यथाशक्य अवश्य आपका समाधान करूँगा।

निबंधमें दिये हुए प्रायः सभी प्रमाण मेरे पास संग्रहित हैं।

शासनदेव ? शासन विरोधीयों को सद्बुद्धि प्रदान करें।

...卐...

(८) ऐतिहासिक प्रमाणोंसे भी मुखवस्त्रिका कों मुँहपर बांधना ही सिद्ध होता है।

(९) जीवरक्षा, और जैनसाधु के लिंगके लिए (आवश्यक कार्यों के सिवाय) सदैव मुखवस्त्रिका मुँहपर बांधना आवश्यक है।

(१०) मुखवस्त्रिका मुँहपर बांधने के विरूद्ध की गई शंकाएं केवल कुतर्क ही है। सत्त्यांश का तो नाम मात्र भी नहीं है।

इस प्रकार हम अपने इस छोटे से निबन्ध में मुखवस्त्रिका का मुँहपर बांधना अनेक प्रबल एवम् अकाट्य प्रमाणों द्वारा-सिद्ध कर उसके विरोधमें उठाई हुई शंकाओंको निर्मूल कर चुके हैं।

यदि हमारे प्रेमी पाठक इस छोटेसे निबन्ध को कमसे कम एक बार ध्यान पूर्वक शांत चित्तसे अवलोकन करेंगे, तो-उन्हें यह अवश्य विश्वास होगा, कि हमारे मूर्तिपूजक भाई, और हमारी समाजसे तिरस्कार पाये हुए ज्ञानसुंदरजी, जो हम पर आक्षेप एवम् आक्रमण कर रहे हैं, वे केवल द्वेष पोषण के लिए और साथमें सिथिलाचारको शास्त्र सम्मत सिद्ध करने के लिये ही। यातो इन्हें अपने सामाजिक ग्रंथों का ज्ञान नहीं, या ये जान बूझकर अभिनिवेशकी प्रबलतासे अपने हठको छोड़ते नहीं है।

परंतु, हा ? मिथ्याभिमान ? तुझे कुछभी विचार नहीं होता। अरे, तुझे कमसे कम इतना तो ध्यान रखना चाहिये, कि-मैं, कमसे कम पतीत पावन जैनधर्म परसे तो अपनी माया हठालूँ। और साधु एवम् पंच महाव्रत धारी वीर पुत्र एवम् मरुधर केशरी कहे जानेवाले व्यक्तियों को तो अपनी जालसे मुक्त करूं।

देख ? तेरे ही कारण आज जैन साधु नाम धारी लोग सिद्धान्त सम्मत विधानको जान लेने पर भी झूठा कह रहे है।

देव ? यदि मेरी सलाह माने, तो मैं तुझे यही कहूँगा कि-अब बंदकर बहुत हो चुका, जैनसमाज परसे तूं अपना पंजा हठाले, तेरे लिए और भी बहुतसा स्थान है। सारा संसार पड़ा है।

यदि अबभी तू नहीं समझेगा तो भविष्यमें न जाने क्या होगा ? सुंदरजी जैसे सुंदर हृदयी (?) लोंगोके कारण समाज शांति भयभीत है।

प्रिय पाठक वृंद ? यदि आपको मेरे इतने लेख परसे कुछ पूछना हो, या मेरे दिये प्रमाणों में संदेह हो तो-कृपाकर मुझे लिखनेका कष्ट करें। मै यथाशक्य अवश्य आपका समाधान करूँगा।

निबंधमें दिये हुए प्रायः सभी प्रमाण मेरे पास संग्रहित हैं।

शासनदेव ? शासन विरोधीयों को सद्बुद्धि प्रदान करें।

...卐...

सूचना-

प्रतिक्षा कीजिये,

लिखना प्रारम्भ हो गया है।

क्या ?

श्रीज्ञानसुन्दरजी के मूर्तिपूजा के प्राचीन

इतिहास का

यथातथ्य

उत्तर

जिसमें—

ज्ञानसुन्दरजी के सभी आक्षेपों का स्पष्ट सप्रमाण उत्तर दिया जायगा।

और बादमें

(१) सिथिलाचार का श्रीगणेश (२) और पतितों की दशा नामक निबन्ध ज्ञानसुन्दरजी के उत्तरमें लिखनेका विचार है।

—लेखक.

परिशिष्ट

[अभिप्राय]

(१)

Uvasagadasao Page 51 Note 144.

Text: Muhapatti, Skr. Mukhapatri lit. 'a leaf for the mouth; a small piece of cloth, suspended over the mouth to protect it against the entrance of any living thing, see Bhag. P. 195 where Muhamottiam is probably an error for Muhapattiyam.

उवासग दसाओ पत्र ५१ नोट १४४

अर्थः—

मूल मुहपती संस्कृत मुखपत्री शब्दार्थ ' मुंह के लिये एक पट्टी ' ' एक छोटा कपडेका टुकडा ' मुंहके अन्दर किसी जानदार चीजका प्रवेश रोकनेके लिये मुंह पर लटकाया जाता है, देखो भग० पत्र १९५ जहां मुहमोत्तियम् शायद गलती है मुहपत्तियम् के लिये ।

यह अभिप्राय एक रसायन शास्त्री का है जो भारत में सर्व श्रेष्ठ रसायनिक है

The Jain Sthanakwasi Sadhu is noted for his asceticism and for the riged observence of the vow of non-violence in thought speech and deed.

The one Constant endeavour of his life is to follow this vow in all its varied aspects. Even his dress, which may appear somewhat peculiar, has been evolved so as to help him in his object. The "Munhpatti" i. e. small piece of cloth which he wears on his mouth at all times, except when he is taking his meals or doing such things, is probably the most peculiar feature of his dress

It has for him the moral value in that it serves as a constant reminder that whatever comes out from the mouth underneath it must be pure, truthful and honest

A part from this moral significance the "Munhpatti" prevents injury to the microscopic organisms floating in the air, which would be caused by the just and wartruth of the breath if it were unchecked by the

"Munhpatti" over the mouth. This may seem as carrying the practice of non-violence to fantastic heights but with this one must remember that the one mission of the sadhu's life is to practise nonviolence as rigidly and completely as is humanly possible.

Leaving aside these spiritual values, the piece of cloth has also some obvious hygienic advantages A Surgeon covers his mouth when performing an operation to protect his patient against any infection that may be carried with his breath and also to protect himself against any infection being carried to his throat. (often those who prepare food do the same and for the same reason), The "Munhpatti" in a measure varying under circumstances, safeguards the user and those surrounding him from possible infection Carried by the breath

But the essential significance is spiritual and what ever the hygienic value, is only incidental.

Daulat Singh Kothari.
M.SC PH D. (Cantal)
Head of the Physics Dept
University
DELHI

यह अभिप्राय एक रसायन शास्त्री का है जो भारत में सर्व श्रेष्ठ रसायनिक है

The Jain Sthanakwasi Sadhu is noted for his asceticism and for the riged observence of the vow of non-violence in thought speech and deed.

The one Constant endeavour of his life is to follow this vow in all its varied aspects Even his dress, which may appear somewhat peculiar, has been evolved so as to help him in his object. The " Munhpatti " i. e. small piece of cloth which he wears on his mouth at all times, except when he is taking his meals or doing such things, is probably the most peculiar feature of his dress

It has for him the moral value in that it serves as a constant reminder that whatever comes out from the mouth underneath it must be pure, truthful and honest

A part from this moral significance the "Munhpatti" prevents injury to the microscopic organisms floating in the air, which would be caused by the just and wartruth of the breath if it were unchecked by the

"Munhpatti" over the mouth. This may seem as carrying the practice of non-violence to fantastic heights but with this one must remember that the one mission of the sadhu's life is to practise nonviolence as rigidly and completely as is humanly possible

Leaving aside these spiritual values, the piece of cloth has also some obvious hygienic advantages A Surgeon covers his mouth when performing an operation to protect his patient against any infection that may be carried with his breath and also to protect himself against any infection being carried to his throat. (often those who prepare food do the same and for the same reason), The "Munhpatti" in a measure varying under circumstances, safeguards the user and those surrounding him from possible infection Carried by the breath

But the essential significance is spiritual and what ever the hygienic value, is only incidental.

Daulat Singh Kothari.
M.SC. PH D. (Cantal)
Head of the Physics Dept
University
DELHI

(२)

अर्थः—जैन स्थानक वासी साधु अपनी तपस्या और अहिंसा के व्रतको मन, वचन और कर्मसे कड़ी तौर पर पालन करनेके लिये प्रसिद्ध हैं।

उनके जीवन का एक मात्र दृढ़ उद्योग इस व्रत को उसके विभिन्न रूपों में पालन करना है। यहां तक कि उनका वेष भी जो कुछ विचित्र सा प्रतीत हो सकता है उनके उद्देश्यको पूरा करनेमें सहायता प्रदान करने वाला बन गया है। "मुंहपत्ति" अर्थात् कपड़ेका छोटा टुकडा, जिसको वे भोजन अथवा ऐसा ही कोई कार्य करनेके अतिरिक्त, हरसमय मुंहपर बान्धे रखते है, उनके वेषकी सबसे अधिक विचित्रता है। उनके लिये इसका नैतिक सुख यह है कि यह हरवक्त उनको स्मरण कराती रहती है कि उसके निचेसे, मुंहसे जो शब्द निकलें वे शुद्ध, सत्य और निष्कपट हो।

इस नैतिक अभिप्राय के अतिरिक्त यह "मुंहपति" वायु में उड़ने वाले सूक्ष्मदर्शी जीवोंको उस हानिसे बचाती है कि जो यदि " मुंहपत्ति " नहीं होती तो स्वास के झौंके और उसकी उष्णतासे हो जाती। ऐसा करना अहिंसा के अभ्यास को विचार तरंगोमें उडा लेना प्रतीत हो सकता है परन्तु स्मरण रहे कि साधु के जीवन का एक मात्र उद्देश्य अहिंसा व्रतको जहां तक मानव प्रयास से संभव है कड़ी तौर पर एवं पूर्णता से पालन करना ही है।

इन आध्यात्मिक लाभों को छोड़ कर, इस कपडे के टुकड़े से कुछ स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभ भी हैं जैसे एक सर्जन जब चीरा फाड़ीका काम करता है उस समय वह अपना मुंह ढ़क लेता है ताकि उसके स्वाससे रोगी पर कोई जीव असर नहीं करे तथा रोगीके रोगिष्ठ कीटभी उसके गलेमें प्रवेश न करसकें (भोजन बनाने वाले भी प्रायः इन्हीं कारणोंसे ऐसा ही किया करते है) संयोगानुकूल, विभिन्न नामवाली "मुंहपत्ति" उसको बांधने वाले तथा उसके निकटस्थ लोगोंकी स्वाससे लग जाने वाले रोगोंसे रक्षा करती है।

परन्तु इसका मुख्य अभिप्राय आध्यात्मिक ही है और जो स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभ हैं, वह केवल आकस्मिक है।

(३)

श्री रत्न विजयजीगणि मुहपत्ति चर्चासार पृ. ७९ में अंतिम प्रार्थना करते हुए लिखते हैं कि—

"आ प्रकारे मुहपत्ति बंधनने लगता प्रसंगो विषेना पूर्वाचार्यो कृत जुदा जुदा प्राचीन शास्त्र ग्रंथोना पाठोनो मळी आवेलो संग्रह पूर्ण थाय छे, तेथी मुहपत्ति बंधन ए जैन शास्त्र विहित प्रवृत्ति छे, एम निर्विवाद सिद्ध थाय छे, ते स्वलिंग छे, ते बांधवामां न आवे तो प्रायश्चित आवे छे."

पुनः पृष्ठ ९१ की अंतिम पंक्ति से लिखते है कि—

मुहपत्तिनुं अबंधन निवारित प्रवृत्ति छे, अने मुहपत्ति बंधन शास्त्र पाठोथी साबित परंपरानी अने अनिवारित प्रवृत्ति छे, एटले के शास्त्रसिद्ध अने संघ—सम्मत, परंपरा सिद्ध एम त्रणेय रीते तीर्थ रूप प्रवृत्ति छे।

———

सम्मति पत्र--

प्रसिद्ध गणिवर्य--नाभा शास्त्रार्थविजेता--श्रीउदय चंद्रजी महाराज साहब की सम्मति—

आज यह मुखवस्त्रिका निबन्ध भाई रतनलालजी डोशी ने पढ़कर सुनाया, बड़ा आनन्द हुवा। लेखकने बडी होंशियारीसे मुखवस्त्रिका मुंह पर बांधना सप्रमाण सिद्ध किया है। हमारा अभिप्राय है कि-इससे समाजका बडा लाभ होगा।

समस्त जैन समाज का चाहिए कि-इस पुस्तक को ध्यान पूर्वक पठन और मनन कर लेखक के परिश्रम को सफल करें।

भारत रत्न शतावधानी प्रसिद्ध विद्वान पंडित मुनिराज श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब की सम्मति-

भाई रतनलालजी डोशीए मुखवस्त्रिका सिद्धि नामनो निबन्ध अथ थी इति सुधी स्वमुखे वांची संभळाव्यो, लेखकनी शोधक वृत्ति प्रसशा पात्र छे, जेओ मुखवस्त्रिका बांधवानुं स्वीकारता नथी, तेओनां वचनोनुं अवतरण आपी ने मुखवस्त्रिका बांधवानुं सप्रमाण समर्थन कर्युंछे, ए लेखकनी खूबी छे.

आवा ऊगता लेखकने ए दिशामां उत्साह प्रेरक उत्तेजन मळे तो ते आथी पण वधारे संगीन साहित्यनी सेवा बजावी शके, एवी संभावना छे. जिज्ञासु वर्ग लेखकना प्रयासनी कदर करवा नहिं चूके एवी आशा छे, सुज्ञेषु किं बहुना ।